स्वदेशी भारत

राजीव दीक्षित जी का सम्पूर्ण परिचय
भारत की आजादी का असली इतिहास
विश्व को भारत की देन
बहुराष्ट्रीय कंपनी का मकड़जाल
स्वदेशी चिकित्सा
स्वदेशी शिक्षा
स्वदेशी कृषि

भारत की आजादी का असली इतिहास

आज से लगभग 400 साल पहले, वास्कोडीगामा आया था हिंदुस्तान, इतिहास की चोपड़ी में, इतिहास की किताब में हमसब ने पढ़ा होगा कि सन् 1498 में मई की 20 तारीख को वास्कोडीगामा हिंदुस्तान आया था।

इतिहास की चोपड़ी में हमको ये बताया गया कि वास्कोडीगामा ने हिंदुस्तान की खोज की, पर ऐसा लगता है कि जैसे वास्कोडीगामा ने जब हिंदुस्तान की खोज की, तो शायद उसके पहले हिंदुस्तान था ही नहीं। हज़ारो साल का ये देश है, जो वास्कोडीगामा के बाप दादाओं के पहले से मौजूद है इस दुनिया में, तो इतिहास कि चोपड़ी में ऐसा क्यों कहा जाता है कि वास्कोडीगामा ने हिंदुस्तान की खोज की,

भारत की खोज की, और मै मानता हुँ कि वो एकदम गलत है, वास्कोडीगामा ने भारत की कोई खोज नहीं की, हिंदुस्तान की भी कोई खोज नहीं की, हिंदुस्तान पहले से था, भारत पहले से था।

वास्कोडीगामा यहाँ आया था भारतवर्ष को लूटने के लिए, एक बात और जो इतिहास में, मेरे अनुसार बहुत गलत बताई जाती है कि वास्कोडीगामा एक बहुत बहादुर नाविक था, बहादुर सेनापति था, बहादुर सैनिक था, और हिंदुस्तान की खोज के अभियान पर निकला था, ऐसा कुछ नहीं था, सच्चाई ये है कि पुर्तगाल का वो उस ज़माने का डॉन था, माफ़िया था। जैसे आज के ज़माने में हिंदुस्तान में बहुत सारे माफ़िया किंग रहे है, उनका नाम लेने की जरुरत नहीं है, क्योकि मंदिर की पवित्रता ख़त्म हो जाएगी, ऐसे ही बहुत सारे डॉन और माफ़िया किंग 15वी शताब्दी में होते थे यूरोप में और 15 वी शताब्दी का जो यूरोप था। वहां दो देश बहुत ताकतवर थें उस ज़माने में, एक था स्पेन और दूसरा था पुर्तगाल। तो वास्कोडीगामा जो था वो पुर्तगाल का माफ़िया किंग था। सन् 1490 के आस पास से वास्को डी गामा पुर्तगाल में चोरी का काम, लुटेरे का काम, डकैती डालने का काम ये सब किया करता था, और अगर सच्चा इतिहास उसका आप खोजिए तो एक चोर और लुटेरे को हमारे इतिहास में गलत तरीके से हीरो बना कर पेश किया गया और ऐसा जो डॉन और माफ़िया था उस ज़माने का पुर्तगाल का ऐसा ही एक दुसरा लुटेरा और डॉन था, माफ़िया था उसका नाम था कोलंबस, वो स्पेन का था।

तो हुआ क्या था, कोलंबस गया था अमेरिका को लूटने के लिए और वास्कोडीगामा आया था भारतवर्ष को लूटने के लिए, लेकिन इन दोनों के दिमाग में ऐसी बात आई कहाँ से, कोलंबस के दिमाग में ये किसने डाला की चलो अमेरिका को लुटा जाए, और वास्कोडीगामा के दिमाग में किसने डाला कि चलो भारतवर्ष को लुटा जाए, तो इन दोनों को ये कहने वाले लोग कौन थे? अतुल भाई जो बता रहे थे, वही बात मै आपसे दोहरा रहा हुँ। हुआ क्या था कि 14 वी और 15 वी शताब्दी के बीच का जो समय था, यूरोप में दो ही देश थें जो ताकतवर माने जाते थे, एक देश था स्पेन, दूसरा था पुर्तगाल, तो इन दोनों देशो के बीच में अक्सर लड़ाई झगडे होते थे, लड़ाई झगड़े किस बात के होते थे कि स्पेन के जो लुटेरे थे, वो कुछ जहांजो को लूटते थें तो उसकी संपत्ति उनके पास आती थी, ऐसे ही पुर्तगाल के कुछ लुटेरे हुआ करते थे वो जहांज को लूटते थें तो उनके पास संपत्ति आती थी, तो संपत्ति का झगड़ा होता था कि कौन-कौन संपत्ति ज्यादा रखेगा। स्पेन के पास ज्यादा संपत्ति जाएगी या पुर्तगाल के पास ज्यादा संपत्ति जाएगी, तो उस संपत्ति का बटवारा करने के लिए कई बार जो झगड़े होते थे वो वहां की धर्मसत्ता के पास ले जाए जाते थे, और उस ज़माने की वहां की जो धर्मसत्ता थी, वो क्रिस्चियनिटी की सत्ता थी, और क्रिस्चियनिटी की सत्ता 1492 में के आसपास पोप होता था जो सिक्स्थ कहलाता था, छठवा पोप।

तो एक बार ऐसे ही झगड़ा हुआ, पुर्तगाल और स्पेन की सत्ताओ के बीच में, और झगड़ा किस बात को ले कर था? झगड़ा इस बात को ले कर था कि लूट का माल जो मिले वो किसके हिस्से में ज्यादा जाए, तो उस ज़माने के पोप ने एक अध्यादेश जारी किया, आदेश जारी किया, एक नोटिफिकेशन

जारी किया। सन्. 1492 में, और वो नोटिफिकेशन क्या था? वो नोटिफिकेशन ये था कि 1492 के बाद, सारी दुनिया की संपत्ति को उन्होंने दो हिस्सों में बाँटा, और दो हिस्सों में ऐसा बाँटा कि दुनिया का एक हिस्सा पूर्वी हिस्सा, और दुनिया का दूसरा हिस्सा पश्चिमी हिस्सा, तो पूर्वी हिस्से की संपत्ति को लूटने का काम पुर्तगाल करेगा और पश्चिमी हिस्से की संपत्ति को लूटने का काम स्पेन करेगा, ये आदेश 1492 में पोप ने जारी किया, ये आदेश जारी करते समय, जो मूल सवाल है वो ये है कि क्या किसी पोप को ये अधिकार है कि वो दुनिया को दो हिस्सों में बांटे, और उन दोनों हिस्सों को लूटने के लिए दो अलग अलग देशो की नियुक्ति कर दे? स्पेन को कहा की दुनिया के पश्चिमी हिस्से को तुम लूटो, पुर्तगाल को कहा की दुनिया के पूर्वी हिस्से को तुम लूटो और 1492 में जारी किया हुआ वो आदेश और बुल आज भी एग्जिस्ट करता है।

ये क्रिस्चियनिटी की धर्मसत्ता कितनी खतरनाक हो सकती है उसका एक अंदाजा इस बात से लगता है कि उन्होंने मान लिया कि सारी दुनिया तो हमारी है और इस दुनिया को दो हिस्सों में बांट दो पुर्तगाली पूर्वी हिस्से को लूटेंगे, स्पेनिश लोग पश्चिमी हिस्से को लूटेंगे। पुर्तगालियो को चूँकि दुनिया के पूर्वी हिस्से को लूटने का आदेश मिला पोप की तरफ से तो उसी लूट को करने के लिए वास्को डी गामा हमारे देश आया था, क्योकि भारतवर्ष दुनिया के पूर्वी हिस्से में पड़ता है, और उसी लूट के सिलसिले को बरकरार रखने के लिए कोलंबस अमरीका गया, इतिहास बताता है कि 1492 में कोलंबस अमरीका पहुंचा, और 1498 में वास्को डी गामा हिंदुस्तान पहुंचा, भारतवर्ष पहुंचा। कोलंबस जब अमरीका पहुंचा तो उसने अमरीका में, जो मूल प्रजाति थी रेड इंडियन्स जिनको माया सभ्यता के लोग कहते थे, उन माया सभ्यता के लोगों से मार कर पिट कर सोना चांदी छिनने का काम शुरु किया। इतिहास में ये बराबर गलत जानकारी हमको दी गई कि कोलंबस कोई महान व्यक्ति था, महान व्यक्ति नहीं था, अगर गुजराती में मै शब्द इस्तेमाल करू तो नराधम था, और वो किस दर्जे का नराधम था, सोना चांदी लूटने के लिए अगर किसी की हत्या करनी पड़े तो कोलंबस उसमे पीछे नहीं रहता था।

उस आदमी ने 14 – 15 वर्षो तक बराबर अमेरीका के रेड इन्डियन लोगों को लुटा, और उस लूट से भर – भर कर जहांज जब स्पेन गए तो स्पेन के लोगों को लगा कि अमेरिका में तो बहुत सम्पत्ति है, तो स्पेन की फ़ौज और स्पेन की आर्मी फिर अमरीका पहुंची, और स्पेन की फ़ौज और स्पेन की आर्मी ने अमेरीका में पहुँच कर 10 करोड़ रेड इंडियन्स को मौत के घाट उतार दिया, 10 करोड़ और ये दस करोड़ रेड इंडियन्स मूल रूप से अमरीका के बाशिंदे थे, ये जो अमरीका का चेहरा आज आपको दिखाई देता है, ये अमरीका 10 करोड़ रेड इन्डियन की लाश पर खड़ा हुआ एक देश है, कितने हैवानियत वाले लोग होंगे, कितने नराधम किस्म के लोग होंगे, जो सबसे पहले गए अमरीका को बसाने के लिए, उसका एक अंदाजा आपको लग सकता है, आज स्थिति क्या है कि जो अमरीका की मूल प्रजा है, जिनको रेड इंडियन कहते है, उनकी संख्या मात्र 65000 रह गई है।

10 करोड़ लोगों को मौत के घाट उतारने वाले लोग आज हमको सिखाते है कि हिंदुस्तान में ह्यूमन राईट की स्थिति बहुत ख़राब है। जिनका इतिहास ही ह्यूमन राईट के वोइलेसन्. पे टिका हुआ है, जिनकी पूरी की पूरी सभ्यता 10 करोड़ लोगों की लाश पर टिकी हुई है, जिनकी पूरी की पूरी तरक्की और विकास 10 करोड़ रेड इंडियनों लोगों के खून से लिखा गया है, ऐसे अमरीका के लोग आज हमको कहते है कि हिंदुस्तान में साहब, ह्यूमन राईट की बड़ी ख़राब स्थिति है, कश्मीर में, पंजाब में, वगेरह वगेरह, और जो काम मारने का, पीटने का, लोगों की हत्याए कर के सोना लूटने का, चांदी लूटने का काम कोलंबस और स्पेन के लोगों ने अमेरीका में किया, ठीक वही काम वास्कोडीगामा ने 1498 में हिंदुस्तान में किया।

ये वास्कोडीगामा जब कालीकट में आया, 20 मई, 1498 को, तो कालीकट का राजा था उस समय झामोरिन, तो झामोरिन के राज्य में जब ये पहुंचा वास्को डी गामा, तो उसने कहा कि मै तो आपका मेहमान हुँ, और हिंदुस्तान के बारे में उसको कहीं से पता चल गया था कि इस देश में "अतिथि देवो भव" की परंपरा, तो झामोरिन ने बेचारे ने, ये अतिथि है ऐसा मान कर उसका स्वागत किया, वास्को डी गामा ने कहा कि मुझे आपके राज्य में रहने के लिए कुछ जगह चाहिए, आप मुझे रहने की इजाजत दे दो, परमीशन दे दो। झामोरिन बेचारा सीधा सदा आदमी था, उसने कालीकट में वास्को डी गामा को रहने की इजाजत दे दी। जिस वास्को डी गामा को झामोरिन के राजा ने अथिति बनाया, उसका आथित्य ग्रहण किया, उसके यहाँ रहना शुरु किया, उसी झामोरिन की वास्को डी गामा ने हत्या करायी, और हत्या करा के खुद वास्को डी गामा कालीकट का मालिक बना, और कालीकट का मालिक बनने के बाद उसने क्या किया कि समुद्र के किनारे है कालीकट केरल में, वहां से जो जहांज आते जाते थे, जिसमे हिन्दुस्तानी व्यापारी अपना माल भर-भर के साउथ ईस्ट एशिया और अरब के देशो में व्यापार के लिए भेजते थे, उन जहांजो पर टैक्स वसूलने का काम वास्को डी गामा करता था, और अगर कोई जहांज वास्को डी गामा को टैक्स ना दे, तो उस जहांज को समुद्र में डुबोने का काम वास्कोडीगामा करता था, और वास्कोडीगामा हिंदुस्तान में आया पहली बार 1498 में, और यहाँ से जब लूट के सम्पत्ति ले गया, तो 7 जहांज भर के सोने की अशर्फिया थी। पोर्तुगीज सरकार के जो डॉक्यूमेंट है वो बताते है कि वास्कोडीगामा पहली बार जब हिंदुस्तान से गया, लूट कर सम्पत्ति को ले कर के गया, तो 7 जहांज भर के सोने की अशर्फिया, उसके बाद दुबारा फिर आया वास्कोडीगामा । वास्कोडीगामा हिंदुस्तान में 3 बार आया लगातार लूटने के बाद, चौथी बार भी आता लेकिन मर गया, दूसरी बार आया तो हिंदुस्तान से लूट कर जो ले गया वो करीब 11 से 12 जहाज भर के सोने की अशर्फिया थी, और तीसरी बार आया और हिंदुस्तान से जो लूट कर ले गया वो 21 से 22 जहाज भर के सोने की अशर्फिया थी। इतना सोना चांदी लूट कर जब वास्को डी गामा यहाँ से ले गया तो पुर्तगाल के लोगों को पता चला कि हिंदुस्तान में तो बहुत सम्पत्ति है, और भारतवर्ष की सम्पत्ति के बारे में उन्होंने पुर्तगालियों ने पहले भी कहीं पढ़ा था, उनको कहीं से ये टेक्स्ट मिल गया था कि भारत एक ऐसा देश है, जहाँ पर महमूद गजनवी नाम का एक व्यक्ति आया,

17 साल बराबर आता रहा, लूटता रहा इस देश को, एक ही मंदिर को, सोमनाथ का मंदिर जो वेरावल में है,

उस सोमनाथ के मंदिर को महमूद गजनवी नाम का एक व्यक्ति, एक वर्ष आया अरबों खरबों की सम्पत्ति ले कर चला गया, दूसरे साल आया, फिर अरबों खरबों की सम्पत्ति ले गया, तीसरे साल आया, फिर लूट कर ले गया। और 17 साल वो बराबर आता रहा, और लूट कर ले जाता रहा। तो वो टेक्स्ट भी उनको मिल गए थे कि एक-एक मंदिर में इतनी सम्पत्ति, इतनी पूंजी है, इतना पैसा है भारत में, तो चलो इस देश को लुटा जाए और उस ज़माने में एक जानकारी और दे दूँ, ये जो यूरोप वाले अमरीका वाले जितना अपने आप को विकसित कहे, सच्चाई ये है कि 14 वी। और 15 वी। शताब्दी में दुनिया में सबसे ज्यादा गरीबी यूरोप के देशो में थी, खाने पीने को भी कुछ होता नहीं था। प्रकृति ने उनको हमारी तरह कुछ भी नहीं दिया, न उनके पास नेचुरल रिसोर्सेस है, जितने हमारे पास है। न मौसम बहुत अच्छा है, न खेती बहुत अच्छी होती थी और उद्योगों का तो प्रश्न ही नहीं उठता। 13 वी। और 14 वी। शताब्दी में तो यूरोप में कोई उद्योग नहीं होता था, तो उनलोगों का मूलतः जीविका का जो साधन था जो वो लुटेरे बन के काम से जीविका चलाते थे, चोरी करते थे, डकैती करते थे, लूट डालते थे, ये मूल काम वाले यूरोप के लोग थे। तो उनको पता लगा कि हिंदुस्तान और भारतवर्ष में इतनी सम्पत्ति है तो उस देश को लूटा जाए, और वास्को डी गामा ने आ कर हिंदुस्तान में लूट का एक नया इतिहास शुरु किया।

उससे पहले भी लूट चली हमारी, महमूद गजनवी जैसे लोग हमको लूटते रहे। लेकिन वास्को डी गामा ने आकर लूट को जिस तरह से केन्द्रित किया और ओर्गनाइजड किया वो समझने की जरूरत है, उसके पीछे पीछे क्या हुआ, पुर्तगाली लोग आए, उन्होंने 70 –80 वर्षो तक इस देश को खूब जम कर लूटा। पुर्तगाली चले गए इस देश को लूटने के बाद, फिर उसके पीछे फ्रांसिसी आए, उन्होंने इस देश को खूब जमकर लुटा 70 – 80 वर्ष उन्होंने भी पुरे किए। उसके बाद डच आ गये हालैंड वाले, उन्होंने इस देश को लुटा, उसके बाद फिर अंग्रेज आ गए हिंदुस्तान में लूटने के लिए ही नहीं बल्कि इस देश पर राज्य भी करने के लिए, पुर्तगाली आए लूटने के लिए, फ्रांसिसी आए लूटने के लिए, डच आए लूटने के लिए, और फिर पीछे से अंग्रेज चले आए लूटने के लिए, अंग्रेजो ने लूट का तरीका बदल दिया। ये अंग्रेजो से पहले जो लूटने के लिए आए वो आर्मी ले कर के आए थे बंदूक ले कर के आये थे, तलवार ले के आए थे, और जबरदस्ती लूटते थे। अंग्रेजो ने क्या किया कि लूट का सिलसिला बदल दिया, और उन्होंने अपनी एक कंपनी बनाई, उसका नाम ईस्ट इंडिया रखा। ईस्ट इंडिया कंपनी को ले के सबसे पहले सुरत में आए इसी गुजरात में, ये बहुत बड़ा दुर्भाग्य है इस देश का कि जब जब इस देश की लूट हुई है इस देश की गुजरात के रास्ते हुई है।

जितने लोग इस देश को लूटने के लिए आए बाहर से वो गुजरात के रास्ते घुसे इस देश में, इसको समझिए क्यों ? क्योकि गुजरात में सम्पत्ति बहुत थी, और आज भी है, तो अंग्रेजो को लगा कि सबसे

पहले लूटने के लिए चलो सूरत, पूरे हिंदुस्तान में कही नहीं गए, सबसे पहले सूरत में आए और सुरत में आकर ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए कोठी बनानी है, ऐसा वहां के नवाब के आगे उन्होंने फरमान रखा, बेचारा नवाब सीधा सदा था, उसने अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी को कोठी बनाने के लिए जमीन दे दी, कभी आप जाइए सूरत में, वो कोठी आज भी खड़ी हुई है, उसका नाम है, कुपर विला। एक अंग्रेज था उसका नाम था जेम्स कुपर, 6 अधिकारी आए थे सबसे पहले ईस्ट इंडिया कंपनी के, उनमे से एक अधिकारी था जेम्स कूपर, तो जेम्स कुपर ने अपने नाम पर उस कोठी का नाम रख दिया कुपर विला, तो ईस्ट इंडिया कंपनी की सबसे पहली कोठी बनी सूरत में, सूरत के लोगों को मालूम नहीं था, कि जिन अंग्रेजो को कोठी बनाने के लिए हम जामीन दे रहे है, बाद में यही अंग्रेज हमारे खून के प्यासे हो जाएँगे, अगर ये पता होता तो कभी अंग्रेजो को सूरत में ठहरने की भी जमीन नहीं मिलती।

अंग्रेजो ने फिर वही किया जो उनका असली चरित्र था। पहले कोठी बनाई, व्यापार शुरु किया, धीरे धीरे पूरे सूरत शहर में उनका व्यापार फैला, और फिर सन्.। 1612 में सूरत के नवाब की हत्या करायी, जिस नवाब से जमीन लिया कोठी बनाने के लिए, उसी नवाब की हत्या करायी अंग्रेजो ने और 1612 में जब नवाब की हत्या करा दी उन्होंने, तो सूरत का पूरा एक पूरा बंदरगाह अंग्रेजो के कब्जे में चला गया। और अंग्रेजो ने जो काम सूरत में किया था सन्.। 1612 में, वही काम कलकत्ता में किया, वही काम मद्रास में किया, वही काम दिल्ली में किया, वही काम आगरा में किया, वही काम लखनऊ में किया, माने जहाँ भी अंग्रेज जाते थे अपनी कोठी बनाने के लिए अपनी ईस्ट इंडिया कंपनी को ले के, उस हर शहर पर अंग्रेजो का कब्जा होता था, और ईस्ट इंडिया कंपनी का झंडा फहराया जाता था। 200 वर्षो के अंदर व्यापार के बहाने अंग्रेजो ने सारे देश को अपने कब्जे में ले लिया, 1750 तक आते आते सारा देश अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी का गुलाम हो गया।

किसी को नहीं मालूम था कि जिस ईस्ट इंडिया कम्पनी को हम व्यापार के लिए छुट दे रहे है, जिन अंग्रेजो को हम व्यापार के लिए जमीन दे रहे है, जिन अंग्रेजो को व्यापार के लिए हिंदुस्तान में हम बुला के ला रहे है, वही अंग्रेज इस देश के मालिक हो जाएँगे, ऐसा किसी को अंदाजा नहीं था, अगर ये अंदाजा होता तो शायद कभी उनको छुट न मिलती, लेकिन 1750 में ये अंदाजा हुआ, और अंदाजा हुआ 1 व्यक्ति को, उसका नाम था सिराजुद्दोला,

बंगाल का नवाब था, तो बंगाल का नवाब था सिराजुद्दोला, उसको ये अंदाजा हो गया कि अंग्रेज इस देश में व्यापार करने नहीं आए है, इस देश को गुलाम बनाने आए है, इस देश को लूटने के लिए आए है। क्योकि इस देश में सम्पत्ति बहुत है, क्योकि इस देश में पैसा बहुत है, तो सिराजुद्दोला ने फैसला किया कि अंग्रेजो के खिलाफ कोई बड़ी लड़ाई लड़नी पड़ेगी, और उस बड़ी को लड़ाई लड़ने के लिए सिराजुद्दोला ने युद्ध किया अंग्रेजो के खिलाफ, इतिहास की चोपड़ी में आपने पढ़ा

होगा कि प्लासी का युद्ध हुआ, 1757 मे , लेकिन इस युद्ध की एक ख़ास बात है जो मै आपको याद दिलाना चाहता हुँ, आज के समय में भी वो बहुत महत्वपूर्ण है। मैं बचपन में जब विद्यार्थी था कक्षा 9 में पढता था, तो मै मेरे इतिहास के अध्यापक से ये पूछता था कि सर मुझे ये बताइए कि प्लासी के युद्ध में अंग्रेजो की तरफ से कितने सिपाही थें लड़ने वाले, तो मेरे अध्यापक कहते थे कि मुझको नहीं मालूम, तो मै कहता था क्यों नहीं मालूम, तो कहते थे कि मुझे किसी ने नहीं पढाया तो मै तुमको कहाँ से पढ़ा दूँ, तो मै उनको बराबर एक ही सवाल पूछता था कि सर आप जरा ये बताइये कि बिना सिपाही के कोई युद्ध हो सकता है कि नहीं तो फिर हमको ये क्यों नहीं पढाया जाता है कि युद्ध में कितने सिपाही अंग्रेजो के पास और उसके दूसरी तरफ एक और सवाल मै पूछता था कि अच्छा ये बताइये कि अंग्रेजो के पास कितने सिपाही थे ये तो हमको नहीं मालुम सिराजुद्दोला जो लड़ रहा था हिंदुस्तान की तरफ से उनके पास कितने सिपाही थे? तो कहते थे कि वो भी नहीं मालूम। प्लासी के युद्ध के बारे में इस देश में इतिहास की 150 किताबे है जो मैंने देखी है, उन 150 मै से एक भी किताब में ये जानकारी नहीं दी गई है कि अंग्रेजो की तरफ से कितने सिपाही लड़ने वाले थे और हिंदुस्तान की तरफ से कितने सिपाही लड़ने वाले थे और मै आपको सच बताऊ मै मेरे बचपन से इस सवाल से बहुत परेशान रहा और इस सवाल का जवाब अभी 3 साल पहले मुझे मिला,वो भी हिंदुस्तान में नहीं मिला लन्दन में मिला।

लन्दन में एक इंडिया हाउस लाइब्रेरी है बहूत बड़ी लाइब्रेरी है, उस इंडिया हाउस लाइब्रेरी में हिंदुस्तान के गुलामी के 20000 से भी ज्यादा दस्तावेज़ रखे हुआ है, जो हमारे देश में नहीं है वहां रखे हुए है, भारतवर्ष को अंग्रेजो ने कैसे तोड़ा कैसे गुलाम बनाया इसकी पूरी विस्तृत जानकारी उन 20000 दस्तावेजो में इंडिया हाउस लाइब्रेरी में मौजूद है। मेरे एक परिचित है प्रोफेसर धर्मपाल, वो 40 वर्ष तक यूरोप में रहे है, मैंने एक बार उनको एक चिट्ठी लिखी, मैंने कहा सर, मै ये जानना चाहता हुँ बेसिक प्रश्न कि प्लासी के युद्ध में अंग्रेजो के पास कितने सिपाही थे? तो उन्होंने कहा देखो राजीव, अगर तुमको ये जानना है तो बहुत कुछ जानना पड़ेगा, और तुम तैयार हो जानने के लिए, तो मैंने कहा मै सब जानना चाहता हुँ। मै इतिहास का विद्यार्थी नहीं लगा लेकिन इतिहास को समझना चाहता हुँ कि ऐसी कौन सी ख़ास बात थी जो हम अंग्रेजो के गुलाम हो गए, ये समझ में तो आना चाहिए अपने को, कि कैसे हम अंग्रेजो के गुलाम हो गए, ये इतना बड़ा देश, 34 करोड़ की आबादी वाला देश 50 हजार अंग्रेजो का गुलाम कैसे हो गया ये समझना चाहिए, तो वो प्लासी के युद्ध पर से वो समझ में आया। उन्होंने कुछ दस्तावेज़ मुझे भेजें, फोटोकॉपी करा के और मेरे पास अभी भी है। उन दस्तावेजो को जब मै पढता था तो मुझे पता चला कि प्लासी के युद्ध में अंग्रेजो के पास मात्र 300 सिपाही थे, 300 और सिराजुद्दोला के पास 18000 सिपाही थे। अब किसी भी सामने के विद्यार्थी से, बच्चे से, या सामान्य बुद्धि के आदमी से आप ये पूछो के एक बाजू में 300 सिपाही, और दूसरे बाजू में 18000 सिपाही, कौन जीतेगा? 18000 सिपाही जिनके पास है वो जीतेगा।

लेकिन जीता कौन ? जिनके पास मात्र 300 सिपाही थे वो जीत गए, और जिनके पास 18000 सिपाही थे वो हार गए और हिंदुस्तान के, भारतवर्ष के एक एक सिपाही के बारे में अंग्रेजो के पार्लियामेंट में ये कहा जाता था कि भारतवर्ष का 1 सिपाही अंग्रेजो के 5 सिपाही को मारने के लिए

काफी है, इतना ताकतवर, तो इतने ताकतवर 18000 सिपाही अंग्रेजो के कमजोर 300 सिपाहियो से कैसे हारे ये बिलकुल गम्भीरता से समझने की जरुरत है, और उन दस्तावेजो को देखने के बाद मुझे पता चला कि हम कैसे हारे? अंग्रेजो की तरफ से जो लड़ने आया था उसका नाम था रोबर्ट क्लाइव, वो अंग्रेजी सेना का सेनापति था और भारतवर्ष की तरफ से जो लड़ रहा था सिराजुद्दोला, उसका भी एक सेनापति था, उसका नाम था मीर जाफ़र, तो हुआ क्या था रोबर्ट क्लाइव ये जनता था कि अगर भारतीय सिपाहियों से सामने से हम लड़ेंगे तो हम 300 लोग है मारे जाएँगे, 2 घंटे भी युद्ध नहीं चलेगा और क्लाइव ने इस बात को कई बार ब्रिटिश पार्लियामेंट को चिट्ठी लिख के कहा था। क्लाइव की 2 चिट्ठियाँ है उन दस्तावेजो में, एक चिट्ठी में क्लाइव ने लिखा कि हम सिर्फ 300 सिपाही है, और सिराजुद्दोला के पास 18000 सिपाही है। हम युद्ध जीत नहीं सकते है, अगर ब्रिटिश पार्लियामेंट अंग्रेजी पार्लियामेंट ये चाहती है कि हम प्लासी का युद्ध जीते, तो जरुरी है कि हमारे पास और सिपाही भेजे जाए।

उस चिट्ठी के जवाब में क्लाइव को ब्रिटिश पार्लियामेंट की एक चिट्ठी मिली थी और वो बहुत मजेदार है उसको समझना चाहिए। उस चिट्ठी में ब्रिटिश पार्लियामेंट के लोगों ने ये लिखा कि हमारे पास इससे ज्यादा सिपाही है नहीं, क्यों नहीं है ? क्योकि 1757 में जब प्लासी का युद्ध शुरु होने वाला था उसी समय अंग्रेजी सिपाही फ़्रांस में नेपोलियन बोनापार्ट के खिलाफ लड़ाई लड़ रहे थे और नेपोलियन बोनापार्ट क्या था अंग्रेजो को मार मार के फ़्रांस से भगा रहा था, तो पूरी की पूरी अंग्रेजी ताकत और सेना नेपोलियन बोनापार्ट के खिलाफ फ़्रांस में लडती थी इसी लिए वो ज्यादा सिपाही दे नहीं सकते थे, तो उन्होंने कहा अपने पार्लियामेंट में कि हम इससे ज्यादा सिपाही आपको दे नहीं सकते है, जो 300 सिपाही है उन्हीं से आपको प्लासी का युद्ध जीतना होगा, तो रोबर्ट क्लाइव ने अपने दो जासूस लगाए, उसने कहा देखो युद्ध लड़ेंगे तो मारे जाएँगे, अब आप एक काम करो, उसने दो अपने साथियों को कहा कि आप जाओ और सिराजुद्दोला की आर्मी में पता लगाओ कि कोई ऐसा आदमी है क्या जिसको रिश्वत दे दें, जिसको लालच दे दें और रिश्वत के लालच में जो अपने देश से गद्दारी करने को तैयार हो जाए, ऐसा आदमी तलाश करो। उसके दो जासूसों ने बराबर सिराजुद्दोला की आर्मी में पता लगाया कि हां एक आदमी है, उसका नाम है मीर जाफर, अगर आप उसको रिश्वत दे दो, तो वो हिंदुस्तान को बेंच डालेगा। इतना लालची आदमी है और अगर आप उसको कुर्सी का लालच दे दो, तब तो वो हिंदुस्तान की 7 पुश्तो को बेंच देगा और मीर जाफर क्या था, मीर जाफर ऐसा आदमी था जो रात दिन एक ही सपना देखता था कि एक न एक दिन मुझे बंगाल का नवाब बनना है और उस ज़माने में बंगाल का नवाब बनना ऐसा ही होता था जैसे आज के ज़माने में बहुत नेता ये सपना देखते है कि मुझे हिंदुस्तान का प्रधानमंत्री बनना है, चाहे देश बेंचना पड़े, तो मीर जाफर के मन का ये जो लालच था कि मुझे बंगाल का नवाब बनना है, माने कुर्सी चाहिए, और मुझे पूंजी चाहिए, पैसा चाहिए, सत्ता चाहिए और पैसा चाहिए। ये दोनो लालच उस समय मीर जाफर के मन में सबसे ज्यादा प्रबल थे, तो उस लालच को रोबर्ट क्लाइव ने बराबर भांप लिया।
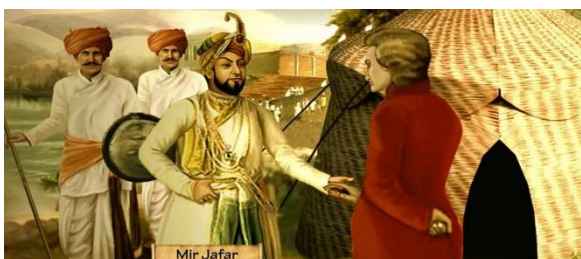
तो रोबर्ट क्लाइव ने मीर जाफर को चिट्ठी लिखी है, वो चिट्ठी दस्तावेजो में मौजूद है और उसकी फोटोकोपी

मेरे पास है, उसने चिट्ठी में दो ही बातें लिखी है, देखो मीर जाफर अगर तुम अंग्रेजो के साथ दोस्ती करोगे, और ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ समझौता करोगे, तो हम तुमको युद्ध जीतने के बाद बंगाल का नवाब बनाएँगे और दूसरी बात कि जब आप बंगाल के नवाब हो जाओगे तो सारी की सारी सम्पत्ति आपकी हो जाएगी। इस सम्पत्ति में से 5 टका हमको दे देना, बाकि तुम जितना लूटना चाहो लूट लो। मीर जाफर चूँकि रात दिन ये ही सपना देखता था कि किसी तरह कुर्सी मिल जाए, और किसी तरह पैसा मिल जाए, तुरंत उसने वापस रोबर्ट क्लाइव को चिट्ठी लिखी और उसने कहा कि मुझे आपकी दोनों बातें मंजूर है, बताइए करना क्या है ? तो आखरी चिट्ठी लिखी है रोबर्ट क्लाइव ने मीर जाफर को कि आपको सिर्फ इतना करना है कि युद्ध जिस दिन शुरु होगा, उस दिन आप अपने 18000 सिपाहियो को कहिए की वो मेरे सामने सरेंडर कर दें बिना लड़े।

मीर जाफर ने कहा कि आप अपनी बात पे कायम रहोगे ? मुझे नवाब बनाना है आपको, तो रोबर्ट ने कहा कि बराबर हम अपनी बात पे कायम है, आपको हम बंगाल का नवाब बना देंगे, बस आप एक ही काम करो कि अपनी आर्मी से कहो, क्योकि वो सेनापति था आर्मी का, तो आप अपनी आर्मी को आदेश दो कि युद्ध के मैदान में वो मेरे सामने हथियार डाल दे, बिना लड़े, मीर जाफर ने कहा कि ऐसा ही होगा और युद्ध शुरु हुआ 23 जून 1757 को। इतिहास की जानकारी के अनुसार २३ जून 1757 को युद्ध शुरु होने के 40 मिनट के अंदर भारतवर्ष के 18000 सिपाहियो ने मीर जाफर के कहने पर अंग्रेजो के 300 सिपाहियो के सामने सरेंडर कर दिया।

रोबर्ट क्लाइव ने क्या किया कि अपने 300 सिपाहियो की मदद से हिंदुस्तान के 18000 सिपाहियो को बंदी बनाया, और कलकत्ता में एक जगह है उसका नाम है फोर्ट विलियम, आज भी है, कभी आप जाइए, उसको देखिए उस फोर्ट विलियम में 18000 सिपाहियो को बंदी बना कर ले गया। 10 दिन तक उसने भारतीय सिपाहियो को भूखा रखा और उसके बाद ग्यारहवे दिन सबकी हत्या कराई और उस हत्या कराने में मीर जाफ़र रोबर्ट क्लाइव के साथ शामिल था, उसके बाद रोबर्ट क्लाइव ने क्या किया, उसने बंगाल के नवाब सिराजुद्दोला की हत्या कराई मुर्शिदाबाद में, क्योकि उस जमाने में बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद होती थी, कलकत्ता नही। सिराजुद्दोला की हत्या कराने में रोबर्ट क्लाइव और मीर जाफ़र दोनों शामिल थे। और नतीजा क्या हुआ ? बंगाल का नवाब सिराजुद्दोला मारा गया, ईस्ट इंडिया कंपनी को भागने का सपना देखता था इस देश में वो मारा गया, और जो ईस्ट इंडिया कंपनी से दोस्ती करने की बात करता था वो बंगाल का नवाब हो गया, मीर जाफ़र।
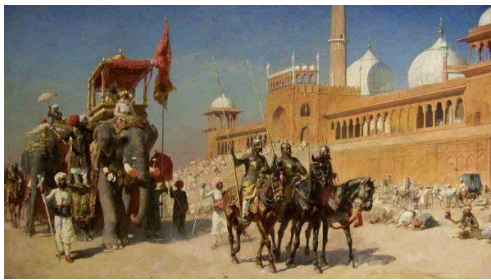
इस पूरे इतिहास की दुर्घटना को मै एक विशेष नजर से देखता हुँ। मै कई बार ऐसा सोंचता हुँ कि क्या मीर जाफ़र को मालूम नहीं था कि ईस्ट इंडिया कंपनी से दोस्ती करेंगे तो इस देश की गुलामी आएगी ? मीर जाफ़र जानता था कि मै मेरे कुर्सी के लालच में जो खेल खेल रहा हुँ उस खेल में इस देश को सैंकड़ो वर्षो की गुलामी आ सकती है, ये वो जनता था और ये भी जानता था कि अपने स्वार्थ में, अपने लालच में मै जो गद्दारी करने जा रहा हुँ इस देश के साथ उसके क्या दुष्परिणाम होंगे, वो भी उसको मालूम थे।

मै ऐसा सोंचता हुँ कि हम गुलामी से आजाद हो जाते, क्योकि 18000 सिपाही हमारे पास थे और 300 अंग्रेज सिपाहियो को मारना बिलकुल आसन्. काम था हमारे लिए, हम 1757 में ही अंग्रेजो की गुलामी से आजाद हो जाते एक बात और दूसरी बात ये जो 200 वर्षो की गुलामी हमको झेलनी पड़ी 1757 से 1947 तक, और उस 200 वर्ष की गुलामी को भागने के लिए 6 लाख लोगों की जो कुर्बानियां हमको देनी पड़ी, वो बच गया होता। भगत सिंह, चंद्रशेखर, उधम सिंह, तांत्या टोपे, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, सुभाष चन्द्र बोस, ऐसे ऐसे नौजवानों की कुर्बानिया दी है ये कोई छोटे मोटे लोग नहीं थे। सुभाष चन्द्र बोस तो आईपीएस टोपर थे, उधम सिंह चाहता तो आय्याशी कर सकता था, बड़े बाप का बेटा था। भगत सिंह और चंद्रशेखर की भी यही हैसियत थी, चाहते तो जिन्दगी की, जवानी की रंगरलियां मानते और अपनी नौजवानी को ऐसे फंदे में नहीं फ़साते, ये सारे वो नौजवान थें जिनका खून इस देश के लिए बहुत महत्वपूर्ण था। 6 लाख ऐसे नौजवानों की कुर्बानियां जो हमने दी, वो नहीं देनी पड़ती और अंग्रेजो की जो यातनाएँ सही, जो अपमान हमने बर्दास्त किया, वो नहीं करना पड़ता अगर एक आदमी नहीं होता, मीर जाफ़र। लेकिन चूँकि मीर जाफ़र था, मीर जाफ़र का लालच था, कुर्सी का और पैसे का, उस लालच ने इस देश को 200 वर्ष के लिए गुलाम बना दिया।।।

और मै आपसे यही कहने आया हुँ कि 1757 में तो एक मीर जाफ़र था आज हिंदुस्तान में हज़ारो मीर जाफ़र है। जो देश को वैसे ही गुलाम बनाने में लगे हुए है जैसे मीर जाफ़र ने बनाया था, मीर जाफ़र ने क्या किया था, विदेशो कंपनी को समझौता किया था बुला के, और विदेशो कंपनी से समझौता करने के चक्कर में उसे कुर्सी मिली थी और पैसा मिला था। आज जानते है हिंदुस्तान का जो नेता प्रधानमंत्री बनता है, हिंदुस्तान का जो नेता मुख्यमंत्री बनता है वो सबसे पहला काम जानते है क्या करता है ? प्रेस कॉन्फ्रेंस करता है और कहता है विदेशो कंपनी वालो तुम्हारा स्वागत है, आओ यहाँ पर और बराबर इस बात को याद रखिए ये बात 1757 में मीर जाफ़र ने कही थी ईस्ट इंडिया कंपनी से कि अंग्रेजो तुम्हारा स्वागत है, उसके बदले में तुम इतना ही करना कि मुझे कुर्सी दे देना और पैसा दे देना। आज के नेता भी वही कह रहे है, विदेशी कंपनी वालों तुम्हारा स्वागत है।

और हमको क्या करना, हमको कुछ नहीं, मुख्यमंत्री बनवा देना, प्रधानमंत्री बनवा देना। 100 – 200 करोड़ रूपये की रिश्वत दे देना, बेफोर्स के माध्यम से हो के एनरोंन के माध्यम से हो। हम उसी में खुश हो जाएँगे, सारा देश हम आपके हवाले कर देंगे। ये इस समय चल रहा है। और इतिहास की वही दुर्घटना दोहराइ जा रही है जो 1757 में हो चुकी है। और मै आपसे मेरे दिल का दर्द रहा रहा हु कि एक ईस्ट इंडिया कंपनी इस देश को 200 – 250 वर्ष इस देश को गुलाम बना सकती है, लूट सकती है तो आज तो इन मीर जफरो ने 8992 विदेशी कम्पनियो को बुलाया है। ।।

विश्व को भारत की देन

हम सभी विद्यार्थी रहे है, सभी पढाई करके निकले है, हम सभी उच्च शिक्षा व माध्यम शिक्षा से निकले है। लेकिन जो बात हमें पढ़ाई जाती है, कि भारत सबसे ज्यादा पिछ़ड़ा देश रहा। फिर पढ़ाया जाता है कि दुनिया में सबसे ज्यादा गरीब देश भारत रहा, भारत ने दुनिया को कुछ नही दिया, फिर पढ़ाया जाता है कि यदि अंग्रेज भारत नही आते तो कुछ नही होता, अंग्रेज नही आते तो शिक्षा नही होती, अंग्रेज नही आते तो विज्ञान नही आता, अंग्रेज नही आते तो टेक्नोलॉजी नही आती, अंग्रेज नही आते तो ट्रेन नही आती, अंग्रेज नही आते तो हवाई जहाज नही होता, ऐसी बाते हम बचपन से पढ़ते आते है, सुनते आते हैं, और आपस में चर्चाये भी करते हैं। लेकिन सबसे ज्यादा दुख और दुर्भाग्य इस बात का है कि अध्यापक हम सब को यह पढ़ाते हैं। गुरू जो हमारे वर्तमान में है, वे गुरू कम हो गये है शिक्षक ज्यादा हो गये है, वर्तमान में जो शिक्षक है वही हमें ये सब पढाते है, और इस तरह से पढ़ाते है कि दिमाग में घुस जाता है। आपने मनोविज्ञान की बात सुनी होगी कि यदि एक झूठ को बार-बार बोला जाता है, तो थोड़ी दिन में झूठ सुनते सुनते सच लगने लगता है। तो भारत के बारे में करीब 200-300 वर्षों से एक झूठ पूरी दुनिया में बोला जाता है, कि भारत एक गरीब देश, भारत एक पिछड़ा देश, भारत एक अवैज्ञानिक देश, भारत एक ऐसा देश जहाँ तकनीक नही, जहाँ गणित नही, जहाँ भौतिक शास्त्र नहीं, कुछ भी नही।

भारत एक ऐसा देश हर समय दूसरो पर निर्भर, भारत एक ऐसा देश जो हर समय परावलंबी, भारत एक ऐसा देश जिसकी सभ्यता और संस्कृति गौरव करने लायक कुछ नही, और जो कुछ गौरव करने लायक है वो सब पाखंड हैं। और हमारे शिक्षको को जब हम ये प्रश्न करते है कि आप हमें ये सब क्यों पढ़ाते है तो वे कहते है कि हमें भी यही पढ़ाया गया है इसलिए हम तुम सब को यही पढ़ाते है। तो हमारे शिक्षको के शिक्षक रहे है, उन्हें भी इसी तरह पढ़ाया गया हैं। लेकिन सबसे ज्यादा कष्ट जब होता है जब कोई साधारण व्यक्ति भारत के बारे में ये कहता है कि हमारे पास ज्ञान नही, हमारे पास तकनीकी नही, हमारे पास विज्ञान नही, हमारे पास अर्थशास्त्र नही, धन नही, कुछ नही। हम तो हमेशा से पिछड़े और गरीब लोग है। साधारण व्यक्ति को तो माफ किया जा सकता है, लेकिन भारत का प्रधानमंत्री तब ये कहने लगे तो दिल को बहुत चोट पहँचती है। हमारे देश के कई प्रधानमंत्रियों के मुहँ से यही सुना है कि भारत देश में ना तो ज्ञान है, ना शिक्षा, ना विज्ञान, ना तकनीक, जो कुछ भी हमारे पास है वो अंग्रेजों की देन है। पूरी दुनिया के सामने हमारे प्रधानमंत्रियों ने बोला है- “सपेरो का देश, लुटेरो का देश, अंधेरे का देश, ठगों का देश”, इस तरह की बाते पूरी दुनिया में भारत के बारे में प्रचारित हुई है। हमारे प्रधानमंत्री के द्वारा लंदन के ऑक्सफोर्ड में भाषण दिया कि “हम अंग्रेजों के बहुत आभारी है, यदि अंग्रेज भारत ना आते तो हमें तो ना विज्ञान पता था, ना तकनीकी पता थी, ना शिक्षा व्यवस्था होती, ना अर्थव्यवस्ता होती, ना डाक विभाग होता, ना रेलवे विभाग होता”। 40 मिनट तक वे अंग्रेजो का गुणगान करते रहे , कि अंग्रेजों का आना भारत के लिए वरदान था। बिल्कुल ऐसा ही भाषण हमारे प्रथम प्रधानमंत्री ने भी संसद में दिया, उन्होंने अपनी संसद में कहा कि “यदि अंग्रेजों का भारत के साथ संयोग नही होता तो भारत तो हमेशा अंधकार और अंधेरे में डूबा हुआ देश ही रहता है, इसलिए भारत का विकास कराना है तो अंग्रेजों जैसा बनाना है, भारत को आगे बढ़ाना है

तो अंग्रेजों के रास्ते पर चलकर ही उसको लेकर चलना है। 2 या 3 प्रधानमंत्री को छोड़ दिया जाये तो सभी इसी मानसिकता के प्रधानमंत्री रहे। लेकिन एक प्रधानमंत्री थे जिन्हे अपनी संस्कृति पर बहुत गर्व होता था उनका नाम था "श्री लाल बहादुर शास्त्री"।
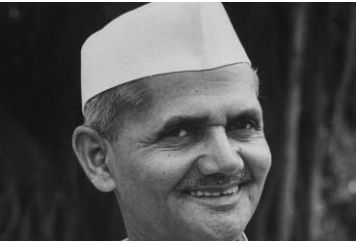
उन्होंने एक फैसला लिया था कि अमेरिका से लाल गेहूँ भारत में आता था, जिस गेहूँ को अमेरिका में जानवर भी नही खाते थे, वो गेहूँ हमें खिलाया जाता था, श्री शास्त्री जी ने फैसला लिया कि ये गेहूँ खाना हमें मंजूर नही है, क्योंकि अपमानजनक तरीके से आता है, और सबसे खराब है, उस समय गेहूँ का उत्पादन कम था, लोगो ने कहा कि हम क्या खायेगे, तो शास्त्री जी ने कहा की हमें भूखे मरना पंसद है, लेकिन अपमानजनक तरीके से विदेशी घटिया गेहूँ खाना मंजूर नही है, इस बात पर संसद पर बहस चल रही थी, तो संसद में बैठे लोगो ने शास्त्री जी से कहा कि यदि ये अमेरिका और यूरोप के देश ना होते तो हम तो कही के ना रहते, तभी शास्त्री जी ने कहा कि अमेरिका और यूरोप के पास ऐसा कुछ नही है जो वे भारत को दे सके, हमारे पास ही है जो हम उन्हें दे सकते हैं।

इसी तरह एक और प्रधानमंत्री हुए इस देश में उनका नाम था 'मोरारजी देसाई'। वे भी यही कहते थे कि दुनिया में अगर सबसे ज्यादा ज्ञान है तो वो भारत के पास है, लेकिन इस बात का दुर्भाग्य है कि उस ज्ञान को दुनिया में स्थापित करने में पीछे रह गये। इसी तरह एक ओर प्रधानमंत्री हुए जो केवल 4 महीने के लिए रहे, उनका नाम था चंद्रशेखर, वे भी यही कहते थे कि यूनान से पुरानी संस्कृति हमारी रही है, यूरोप के ज्ञान से पहले वो ज्ञान भारत में मौजूद रहा है, इसलिए हमें विदेशियों से लेनी की कोई जरूरत नही है। इसी दृष्टि से मैं आपके सामने कुछ तथ्य पेश करना चाहता हूँ, जिसे पढ़कर आप भारत देश पर गर्व करेगे। मैं शुरुआत करता हूँ, भारत ने दुनिया को क्या दिया?

सबसे पहले हम दुनिया के सामने कह सकते है गर्व से, जिसे दुनिया ने भी स्वीकार किया है कि सबसे पहली भाषा और सबसे पहली लिपि(लिखना) दुनिया को दी है तो वो भारत ने दी है, हमारी सबसे पहली भाषा जो है वो संस्कृत है और सबसे पहली लिपि देवनागरी है। लेकिन कुछ इतिहासकार कहते है कि देवनागरी लिपि से भी बहुत पुरानी लिपि रही है जो ब्राह्मी लिपि है। ब्राह्मी लिपि के बारे में सारी दुनिया के वैज्ञानिकों ने जो बात स्वीकारी है वो है कि ब्राह्मी लिपि उतनी ही पुरानी है जितना पुराना भारत। लगभग 2 अरब साल पहले का ये हमारा ब्राह्मण है, प्रकृति है जिसमें भारत बसता है, लगभग उतनी ही पुरानी ब्राह्मी लिपि है। पूरी दुनिया भी यही मानती है कि लिखना यदि सिखाया है किसी देश ने तो भारत ने ही सिखाया है। क्योंकि भारत से पहले लिखने की कला किसी को नही आती थी, इसलिए भारत ने ही सबको लिखना सिखाया, पढ़ना और बोलना थोड़ा आसान होता है लेकिन लिखना थोड़ा कठिन माना जाता है जो लिपि द्वारा संभव है। फिर यहीं लिपि हमारी चीन में गयी, चीन ने हमसे लिखना सीखा, चीन के वैज्ञानिक ईमानदारी से इस बात को स्वीकार करते है, कि चीन के महार्षि भारत आये उन्होंने लिपि का अध्ययन किया, फिर चीन वापस लौटकर वहाँ अपनी लिपि का अविष्कार किया।

भाषा भी भारत ने ही दी है पूरी दुनिया को तो जाहिर सी बात है कि बोलना भी सबसे पहले भारत ने ही सिखाया है। दुनिया की जो विशिष्ट भाषा मानी जाती है अंग्रेजी को छोड़कर जैसे – जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश, पोरतुगिस,रसियन, डेनिस आदि। अंग्रेजी की सामान्य भाषा में गिनती होती है। क्योंकि अंग्रेजी दूसरो की नकल हैं। विशिष्ट (मूल) भाषा के वैज्ञानिक यही कहते है कि हमारी भाषाएं संस्कृत भाषा से ली गयी है। आपको सुनकर हैरानी होगी, दुनिया में कम्प्यूटर को चलाने वाली एल्गोरिथम संस्कृति में ही तैयार की है और कुछ सालो में सारी दुनिया में छा जायेगी। सभी वैज्ञानिक इस बात को स्वीकार करते हैं, वे कहते हैं कि इस भाषा में 2 चीजे महत्व की है पहली विशेषता इसका जो व्याकरण है वो एकदम पक्का हैं, इतना पक्का हैं कि लाखों करोड़ो वर्ष पहले किसी ऋषि मुनि ने जो व्याकरण में कर दिया है, जो 21 वी शताब्दी में उतना ही सच है। जो लाखों करोड़ो वर्ष पहले था। महर्षि पाणिनी के सूत्र हजारों वर्ष पुराने हैं, महर्षि पाणिनी के सूत्रों में एक कोमा तक बदलने की जरूरत आज तक किसी को नही लगती। दुनिया के बाकि सभी भाषाओं में बदलाव होते हैं। लेकिन संस्कृत दुनिया की अकेली एवं विशिष्ट भाषा जिसका व्याकरण एकदम पक्का है, और अगले लाखों करोड़ो वर्ष तक उतना ही पक्का रहेगा।

इसलिए फ्राससियों ने जो भाषा बनायी फ्रेंच उसे संस्कृत का आधार दिया, जर्मनी को संस्कृत का आधार दिया। आप कभी जर्मन व फ्रेंच भाषा को पढ़ने की कोशिश करेंगे बिल्कुल ऐसी हैं जैसी संस्कृत। दुनिया की लगभग 56 ऐसी भाषाएं है जिनके शब्द रूप, धातु रूप संस्कृत जैसे हैं।

दूसरी विशेषता यह है कि भारत की अकेली विशिष्ट भाषा संस्कृत है। जिसके पास शब्दों का सबसे बड़ा भण्डार है। दुनिया में बोली जाने वाली भाषा जिसको हम अंग्रेजी कहते है, रसियन,जर्मन,फ्रेंच,डच,स्पेनिश,डेनिस या चाइनीज। इन सब भाषाओं से हजारो गुणा ज्यादा शब्द संस्कृत भाषा में हैं। महर्षि पाणिनी से लेकर आज तक यदि संस्कृत के उपयोग किये गये शब्दों की गणना की जाए, कि कितने शब्द भाषा के स्तर पर उपयोग किये हैं। 102 अरब 78 करोड़ 50 लाख शब्दों का उपयोग अब तक हो चुका हैं। संस्कृत भाषा बहुता समृद्धशाली हैं। जब भाषा समृद्ध होती है तो साहित्य भी समृद्ध होता है। संस्कृत भाषा में जितना साहित्य लिखा गया हैं पूरी दुनिया में शायद ही किसी भाषा में लिखा गया है। फिर आप कहोगें की ये दिखाई क्यों नही देता। इसका कारण है हमारी लापरवाही का नतीजा है कि हम अपने साहित्य को बचाकर नही रख सके। हमारे साहित्य का बहुत नुकसान हुआ है पिछले 1000 वर्षों में। आपको जानकर हैरानी होगी कि विदेशी लुटेरो ने भारत में आकर लूटना शुरु किया तो केवल सम्पत्ति नही लूटी बल्कि साहित्य को भी लूटा, क्योकि ज्ञान यहाँ भरा पड़ा है, और कई विदेशी अक्रान्ता ऐसे आये थे कि जिन्होने हमारे साहित्य को जला दिया, आपने सुना होगा तक्षशिला की कहानी, भारत के सबसे बड़े पुस्तकालय की कितनी बड़ी दुर्दशा हुई थी, कि उसको जला दिया गया था और तक्षशिला की पुस्तकों को जला देने की बात यह है कि 6 महीने तक विदेशी अक्रन्ताओं ने उन किताबो के पन्ने को जला-जला कर पानी गर्म किया था। ये इतना बड़ा ज्ञान का भण्डार था जो 6 महीने तक जलता रहा था। कल्पना कीजिये लाखो करोड़ो पेज रहे होंगे। कई विदेशी लुटेरे ऐसे आये कि हमारा साहित्य लूट लिया, कई विदेशी लुटेरे ऐसे आये की हमारा साहित्य जला दिया, कई विदेशी अक्रान्ताएं ऐसे आये जिन्होंने हमारे साहित्य को तोड़-मरोड़ करके, उसको ऐसा प्रस्तुत कर दिया कि वो हमें सबसे ज्यादा खराब दिखता हैं। जैसे

वेदों की बात करें, हमारे मूल वेद मुश्किल से मिलते हैं। यदि वेदों की प्रतिलिपि पायी जाती हैं तो पता चलता है कि वे मैक्समूलर रचित हैं और मैक्समूलर ऐसा व्यक्ति था जो भारत को जानना चाहता था लेकिन कभी भारत आया नही, घर बैठे उसे जो कुछ भी भारत के बारे में मिला वो उसने लिख दिया। वेदो को उसने पढ़ा पूरी रूचि से , संस्कृत भी सीखी उसने, लेकिन उसे अधिकाश समझ में नही आया वेदो में, तो उसने अपने तरीको से लिख दिया, और आज हमें ये दिखाई देता है तो हमें ये सब विरोधाभासी दिखायी देती है क्योंकि हमारे मूल ग्रन्थों के साथ छेडछाड़ कर दी, ज्ञान के भण्डार के साथ छेडछाड़ कर दी, हमारे शास्त्रों के साथ छेडछाड़ कर दी।

यदि हम मूल वेदों को देखो और मैक्समूलर रचित वेदों को देखे तो जमीन आसमान का अंतर है, जैसे मूल मनुस्मृति और अंग्रेजों द्वारा रचित मनुस्मृति में जमीन-आसमान का फर्क हैं। अंग्रेजों ने हमारे ग्रन्थों में बहुत कुछ मिलावट कर दी है। जैसे ये हमारे वेदों में से कोट कर देते है कि भारतवासी मांस खाते थे, गाय का मांस खाते थे, तो हमारे पास जो ज्ञान का भण्डार रहा संस्कृत भाषा में, इसमें बहुत नुकसान हो गया। ज्ञान हमारे यहाँ दुनिया में सबसे ज्यादा रहा है, क्योंकि भारत एक तरह से ज्ञान का ही हिस्सा है, 'भा' माने होता है "ज्ञान" और 'रत' माने होता है "लगा हुआ"। ये सब हमारे लिए चुनौती की बात है कि जो हमारे वेद रहे है, हमारे शास्त्र रहे हैं, उन सब को खोज कर दुनिया के सामने लाना है।

यदि विज्ञान की दृष्टि से देखा जाए तो भारत विज्ञान के क्षेत्र में भी सबसे अग्रणी रहा है । स्वास्थ्य को सही रखने हेतु आचार्य चरक ने 'चरक संहिता' की रचना की है ।
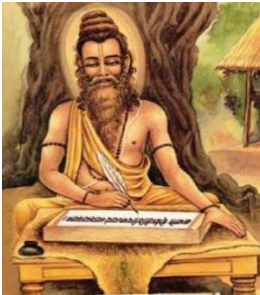
उसमे आयुर्वेद से सभी बीमारियों का उपचार करने का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है । रसोई में काम आने वाले मसालों (फारसी शब्द) अर्थात औषधियों का उपयोग किस मात्रा में करने से कौन सा रोग दूर होता है सब बताया गया है । महर्षि वाग्भट्ट ने बताया कि जीवन शैली कैसे होनी चाहिए, कितनी मात्रा में जल लेना चाहिए, कैसे जल पीना चाहिए इत्यादि का विस्तार पूर्वक विवरण अष्टांगसंग्रह और अष्टांगहृदयसंहिता में दिया है । उदाहरनार्थ बताता हूँ महर्षि वाग्भट ने कहा था कि भोजन बनाते समय सूर्य का प्रकाश और पवन का स्पर्श आवश्यक है और हमारे गावों में भोजन ऐसे ही पकाया जाता है , जापानियों ने अरबों रुपये खर्च कर के बताया है कि खुले में भोजन बनाने से सम्पूर्ण पौष्टिक तत्व भोजन में आते है।

ऐसे बहुत सी बातों का उल्लेख इसमें मिलता है । आयुर्वेद में सभी बिमारियों का पूर्णतया उपचार है अगर आज की चिकित्सा विज्ञान 'एलोपैथी' और 'आयुर्वेद' का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो पता चलता है कि एलोपैथी में सिर्फ बीमारी से लड़ा जाता है पूर्णतया इलाज नही होता। चिकित्सा विज्ञान की सबसे मुश्किल शाखा शल्य चिकित्सा (सर्जरी) होती है , वह भी विश्व को भारत की ही देन है । आचार्य सुश्रुत ने 'सुश्रुत संहिता ' में शल्य चिकित्सा की विधि का वर्णन विस्तारपूर्वक किया है ।

आचार्य सुश्रुत ने 125 उपकरणों का उल्लेख सुश्रुत संहिता में किया है जिनसे शल्य चिकित्सा की जाती थी और आज भी उन 125 उपकरणों का प्रयोग हो रहा है । शल्य चिकित्सा का एक और मुश्किल भाग है प्लास्टिक शल्य चिकित्सा वह भी भारत की देन है । एक उदाहरण से यह बात बताना चाहूँगा " 1770 ई० में एक राजा था हैदर
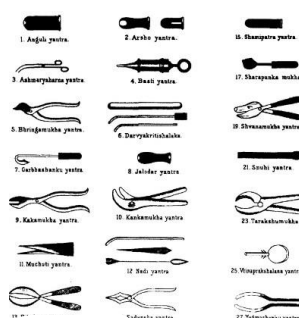
अली, वह कर्नाटक का राजा था। अंग्रेजो ने कर्नाटक को अपने अंतर्गत मिलाने के लिए हैदर अली पर खूब आक्रमण किये परन्तु हर बार अंग्रेजों को मुहँ की खानी पड़ी । 1775 ई० में प्रो० कूट भारत में अधिकारी बनकर आया । उसने भी हैदर अली पर आक्रमण किया हैदर अली ने उसे पराजित कर उसकी नाक काट दी । वह कटी नाक लेकर वापस आ रहा था तो बेलगाम के एक वैद्य ने उसकी दशा पर दया कर के उसकी नाक प्लास्टिक सर्जरी से जोड़ दी । इस घटना का विवरण प्रो० कूट ने ब्रिटिश सभा में किया , तब ब्रिटिश दल भारत उस वैद्य के पास आया और पूछा के यह विद्या आपने कहाँ से सीखी तब उसने बताया कि “यह कार्य मैं क्या कोई भी वैद्य कर सकता है” । तब प्रो० कूट ने यह विद्या पूना में सीख कर इंग्लैंड में सीखाई । यह सब जानकरी प्रो० कूट ने अपनी डायरी में लिखी है । ऐसे ही टीकाकरण की शुरुआत भी भारत में ही हुयी । डॉ. ओलिव ने अपनी डायरी में लिखा है कि "जहाँ विश्व में लोग चेचक से मर रहे है वही यहाँ भारत में चेचक नगण्य के बराबर है और यहाँ इसके लिए टीकाकरण किया जाता है ।" यह घटना 1710 की कलकत्ता की है यह तो सिर्फ कुछ ही उदाहरण है जो ये बताते है कि भारत कितना समृद्ध था और यह ज्ञान भारत में लाखों वर्षों से चला आ रहा है । ये सब घटनाओं का पता विदेशी यात्रिओं के विवरण से चलता है ।
अब थोडा तकनीक की और देखते है । भारत ने विश्व को लोहा (इस्पात या स्टील) बनाना सिखाया। 1795 में एक अंग्रेज अधिकारी ने सर्वेक्षण किया और अपनी यात्रा विवरण में लिखा है कि " भारत में इस्पात का काम कम से कम पिछले 1500 वर्षों से हो रहा है ।" उसके अनुसार " पश्चिमी , पूर्वी, दक्षिणी भारत में 15000 छोटे बड़े कारखाने चल रहे है और हर कारखाने मे रोजाना 500 कि०ग्रा० इस्पात बनाया जाता है । भारत में किसी भी कारखाने की भट्टी में लागत का खर्च 15 रुपये आता है। एक भट्टी से एक टन इस्पात बनाया जाता है और इस्पात बनाने का खर्च 80 रुपये आता है । इस इस्पात से बना सरिया यूरोप के बाजार में बिकता है और इस इस्पात की सबसे बड़ी विशेषता है कि उस पर कभी जंग नहीं लगता है ।"

इस बात का सबसे बड़ा उदाहरण दिल्ली के महरोली में ध्रुव स्तम्भ है जो 1500वर्ष पूर्व (लगभग) बना था और आज तक उस पर जंग नहीं लगा है ।
खगोल विज्ञान के क्षेत्र में गुरुत्वाकर्षण से सम्बन्धित सभी नियम वराहमिहिर और आर्यभट ने न्यूटन से 4000 वर्ष पूर्व ही प्रतिपादित कर दिए थे । सूर्य से पृथ्वी के बीच की दूरी , शनि के उपग्रहों की संख्या , आदि सभी गणना उतनी सटीक है जो आज का विज्ञान मानता है । आर्यभट ने सबसे पहले ब्लैक होल थ्योरी दी । स्पष्ट है कि ये सभी गणना बिना किसी टेलिस्कोप के सम्भव नहीं है अर्थात टेलिस्कोप का आविष्कार भी भारत में ही हुआ था । आर्यभट ने बहुत सारे रहस्य खगोल विज्ञानं के बारे में बताये थे जिनमे पृथ्वी के घूर्णन का समय , दिन रात और वार या यूँ कहें दिन की संख्या बताई थी । हम कह सकते है कि कलेंडर भी भारत की ही देन है ।
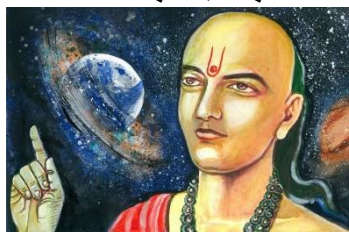
अगर अब बात आर्यभट्ट की हो रही है तो यह तो सर्व विदित है कि शुन्य का आविष्कार भारत ने किया । विश्व को गणना करना भारत ने सिखाया । महर्षि भारद्वाज ने एक ग्रन्थ 'लीलावती' की रचना की उसमे उन्होंने अवकलन के सूत्रों का वर्णन किया है । समाकलन गणित की रचना महर्षि माधवाचार्य ने की है । गणित की बहुत ही सरल शाखा है त्रिकोणमिति उसकी रचना बोधायन ने की थी और किसी भी निर्माण कार्य के लिए त्रिकोणमिति का ज्ञान होना आवश्यक है । बीज गणित की रचना भी महर्षि भरद्वाज ने की थी । बीज गणित में समस्त गणित का छोटा रूप है।

वैदिक गणित एक ऐसी देन है जिसके द्वारा किसी भी गणना को कम से कम समय में किया जा सकता है ।

रसायन शास्त्र में भारत के नागार्जुन का नाम अग्रणी है । नागार्जुन राख से सोना बनाने की विधि को जानते थे । भारत ने ही पारा बनाने की विधि का वर्णन विश्व को दिया है । सबसे पहले बर्फ बनाने की विधि चक्रवर्ती सम्राट हर्षवर्धन के द्वारा खोजी गयी । वह बहुत बड़ा रसायन शास्त्री था । शुष्क सेल का आविष्कार भी भारत में महर्षि अगस्त्य के द्वारा हुआ था । अगस्त्य संहिता में शुष्क सेल बनाने की विधि का पूर्ण विवरण है । डायरेक्ट करंट (दिष्ट धारा) की जानकारी महर्षि अगस्त्य ने ही दी थी । रसरत्न समुच्चय में जस्ता बनाने की विधि का उल्लेखमिलता है ।
अर्थशास्त्र में सबसे बड़ा ग्रन्थ " अर्थशास्त्र" आचार्य चाणक्य के द्वरा दिया गया है जो कि ईसा से 400 वर्ष पूर्व दिया जा चूका है ।
विश्व को सिक्का बनाना भारत ने सिखाया इसका प्रमाण मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से प्राप्त अवशेषों से चलता है । भारत से कई वर्षों से मसालों का निर्यात किया जा रहा है । भारत के इस्पात का विवरण हम पहले ही दे चुके है जो यूरोप के बाजारों में बहुत ही ऊँचे दामों पर बेचा जाता था ।

स्पष्ट है कि भारत में कितना ज्ञान था और यह ज्ञान पूरे भारत में शिक्षण व्यवस्था से दिया जाता था । 1868 में ब्रिटेन में पहला विद्यालय एक कानून के तहत खुला था , उस समय भारत में लगभग 7 लाख 18 हजार 568 गुरुकुल चला करते थे और उन गुरुकुलों में सिर्फ एक आचार्य होते थे और हर गुरुकुल में विद्यार्थियों की संख्या हजारों में हुआ करती थी । कक्षा नायक ही अपने साथी विद्यार्थियों को सिखाया करता था । यह शिक्षण व्यवस्था विश्व को भी भारत ने ही दी थी। प्रो० कूट ने अपनी डायरी में लिखा है कि जिस आचार्य से उसने प्लास्टिक सर्जरी सीखी थी तो सीखाने वाला आचार्य जाती से नाई था अर्थात स्पष्ट है कि जातिगत शिक्षण व्यवस्था भारत में नहीं थी । आज भी ब्रिटेन में भारत की कक्षा नायक वाली शिक्षण व्यवस्था चलती है । जिस समय ह्वेनसांग भारत आया था तब उसने अपने विवरण में लिखा है कि कलकत्ता में 20,000 विद्यार्थी अपनी शिक्षा पूर्ण कर अपने देश लौटने की तैयारी कर रहे है अर्थात भारत से ही समस्त ज्ञान विश्व में फैला है ।
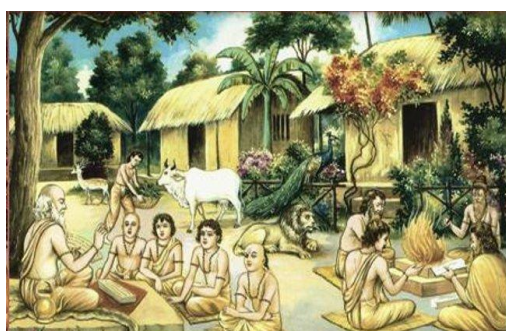
कृषि क्षेत्र में खेती करने के तरीके , पहला अविष्कार पहिया , उपयुक्त फसल प्राप्त करने के तरीके भारत ने ही दिए थे । कुछ अन्य अविष्कार जैसे हवाई जहाज भारत में हुए । 1895 में विश्व का सबसे पहला विमान मुंबई की चौपाटी पर शिवकर बापूजी तलपडे ने उड़ाया था ।
विमान शास्त्र (महर्षि भारद्वाज द्वारा रचित) के अनुसार विमान बनाने के 500 सिद्धांत है और हर सिद्धांत से 32 अलग अलग तरह के विमान बनाये जा सकते है । 1895 में जो विमान उड़ा वह 1500 फीट उपर उड़ाया गया था और वह भी बिना चालक के उड़ाया गया था , उस विमान को सुरक्षित तरीके से उतारा भी गया था । इस विमान को उड़ते हुए राजकोट के राजा अशोक गायकवाड , मुंबई हाई कोर्ट के जज गोपाल रानाडे , और लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने देखा था । हमारी लापरवाही के कारण यह अविष्कार(1903) राईट बंधू के नाम दर्ज हुआ । उन्होंने जो विमान बनाया वह 120 फीट उपर उड़कर नीचे गिर गया था । बारूद का आविष्कार भी भारत में हुआ । भारत में बारूद का उपयोग 6वी शताब्दी में पटाखे बनाने के लिए किया जाता था । अंग्रेजों ने बारूद बनाना भारत में सीखा और उसका उपयोग हथियार बनाने के लिए किया ।
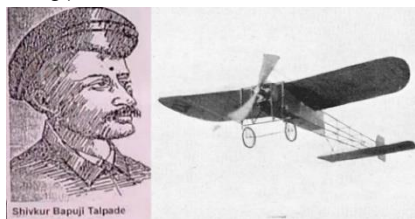
अध्यात्म के क्षेत्र में भारत का लोहा आज भी समग्र विश्व मानता है । आज भी यह स्पष्ट है कि अध्यात्म में हम से आगे कोई नहीं है ।
अतः यह स्पष्ट हो चूका है कि भारत ने विश्व को हर क्षेत्र बहुत कुछ दिया है और हर क्षेत्र में भारत का योगदान है । भारत इसीलिए विश्व गुरु कहलाने लायक था और भारत को विश्व गुरु कहा भी गया है । अब हमे यह मिथक पालने की कोई आवश्यकता नही कि भारत का विश्व के प्रति कोई योगदान नहीं है । जो यह मिथक पाले हुए है तो उसे सत्य से अवगत कराना हमारा कर्तव्य है । अति महत्वपूर्ण कार्य ये भी है कि जो भी अविष्कार भारत वासियों ने किये है उनको भारतवासियों के नाम पर दर्ज करवाना है जो अविष्कार किसी और के नाम से दर्ज है उन्हें सही करवाया जाए और सभी तथ्य सबके सामने लाये जाये । जो हमारे ग्रंथों को नष्ट किया गया या लूटा गया, उन्हें वापस लाया जाये या फिर उनमे तोड़ मोड़ के पुनः लिख दिया गया है तो उन्हें दुबारा असली ग्रंथों से सुधार किया जाए यह भी हमारा कर्तव्य है ताकि आने वाली पीढ़ी सत्य स्वीकारे और भारत को हीन दृष्टि से न देख कर गौरवपूर्ण दृष्टि से देखे ।

बहुराष्ट्रीय कंपनियां और मौत का व्यापार

आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में आदिकाल से मनुष्य को शारीरिक और मानसिक कष्टों से मुक्ति दिलाने के लिए जितने भी प्रयत्न हुए हैं उनके पीछे मूल प्रेरणा रही है मानव सेवा, रोगियों की सेवा संसार के सभी धर्मों में एक प्रमुख अंग रहा है और इसे आध्यात्मिक उत्थान का व्यावहारिक आधार समझा गया हैं।

पिछले 200-300 वर्षों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उदय के साथ ही सेवा का यह क्षेत्र बहुत बड़े व्यापार में बदल गया। बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों द्वारा भारी मात्रा में दवा निर्माण के कारण और उनकी खपत करवाने के कारण चिकित्सा और दवा उद्योग की कार्य प्रणाली में भारी परिवर्तन आया। दोनों एक दूसरे के पूरक बन गये। व्यावसायिक रूप से तैयार होते चिकित्सकों ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाना शुरु कर दिया। वे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के एजेण्ट बन गये और दूसरी तरफ बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों ने ढ़ेर सारे प्रलोभन और सुविधाएँ डॉक्टरों को उपलब्ध कराना शुरु कर दिया हैं।

पिछले 5-7 वर्षों में जब से विश्व व्यापार संगठन (WTO) की दखलदांजी विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था में बढ़ी है। तब से बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों की भूमिका भी संदिग्ध हो गयी है। ऐसी स्थिति में इस पूरे दवा उद्योग के बारे में आम जनता को बताने के लिए बहुत कुछ लिखा गया है। लेकिन वह आसानी से उपलब्ध नहीं होता। ऐसी स्थिति में आजादी बचाओं आंदोलन ने देश की जनता के सामने बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा की जा रही लूटखोरी के खिलाफ बिगुल बजाया है। इसी कड़ी में आंदोलन के वरिष्ठ साथी श्री वंशीधर मिश्र ने यह लेख (बहुराष्ट्रीय कंपनियां एवं मौत का व्यापार) तैयार किया।

आंदोलन को उम्मीद है कि इस पुस्तक के माध्यम से जो विचार वह संप्रषित करना चाहता है वह आम जनता तक अवश्य पहुंचेगा।

आज जब विश्व व्यापार संगठन के कानून पुनः लागू होने जा रहे है तब यह आवश्यक हो जाता है कि देश के सभी कोनों से इसके खिलाफ आवाजें उठें और जनता इसके खिलाफ खड़ी हों।

राजीव दीक्षित

आजादी बचाओं आंदोलन

जीवन रक्षा से मौत के व्यापार तक

युरोप की औद्योगिक क्रान्ति ने मानव इतिहास में युगान्तकारी परिवर्तन लाये। कृषि और कारीगरी पर टिके समाज की बुनियादें एक-एक करके ढहने लगीं। उत्पादन शैली, खाने-पीने के तौर-तरीके, पहनावा, भाषा, चिकित्सा पद्धतियों में परिवर्तन आये। ये परिवर्तन सतही नहीं, बुनियादी थे। विनिमय प्रधान कृषि-युगीन व्यवस्था, चलन के बाहर होने लगी और उनका स्थान ले लिया बेजान मशीनीय रिश्तों पर टिके व्यापारिक समाज ने।

उद्योग का पेट भरने के लिए जंगल कटे। विशालकाय उद्योगों के रासायनिक कचरों, तेज दौड़ती गाड़ियों एवं रेलगाड़ियों के धुओं ने धरती, पानी और आसमान में जहर घोल दिया। इस विषाक्त वातावरण ने नई-नई बीमारियों को जन्म दिया।

औद्योगिक समाज की पहली जरुरत थी बाजार। इसलिए बाजार की तलाश में इंग्लैण्ड़ जैसे देशों ने दुनिया के कृषि प्रधान देशों पर कब्जा करना शुरु कर दिया। युद्ध हुए नये समाज की जटिलताओं ने तमाम तरह के तनावों को जन्म दिया। दुनिया के बड़े चिकित्सा वैज्ञानिकों का मानना है कि हाइपरटेन्शन, हृदय रोग, कैंसर, मस्तिष्क संबंधी तमाम बीमारियों का सबसे बड़ा कारण आधुनिक समाज के तनाव हैं। इस समाज की तेज भाग-दौड़ती जिंदगी में रोगों के इलाज के लिए परम्परागत चिकित्सा पद्दतियां अपर्याप्त साबित होने लगीं और धीरे-धीरे चलन से लगभग बाहर हो गयीं। इन परिस्थितियों में औद्योगिक समाज ने अपनी जरुरतों के मुताबिक ‘एलोपैथी’ को जन्म दिया। एलोपैथी की पहली दवा एंटीबायटिक के रूप में युद्ध में घायल सिपाहियों के उपचार के लिए खोजी गयी थी।

स्पष्ट रूप से औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप बदली सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों ने नई पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति के लिए आधार-भूमि तैयार किया। बाजार पर कब्जा करने के लिए आग्नेयास्त्रों के प्रयोग से युक्त युद्ध की नई तकनीकी ने एक ऐसी चिकित्सा पद्धति को मानव इतिहास में जरूरी बना दिया जो घायल और मरते हुए सिपाहियों का उपचार करके उन्हें पुनः किसी समीपस्थ युद्ध के लिए तैयार कर सकें।

लेकिन ज्ञान की धारा तो रूकने वाली नहीं थी। इस नई चिकित्सा पद्धति के अन्तर्गत ऐसी दवाओं की खोज की गयी जिसने प्लेग, हैजा और चेचक जैसे संक्रामक रोगों पर काबू पाकर प्रत्येक वर्ष उनसे मरने वाले लाखों इंसानों को जीवनदान दिया। घोर अनिश्चित और कभी भी आ धमकने वाली मौत के खौफ से समूची मानवता को मुक्त करने वाली नई चिकित्सा पद्धति का दुनिया ने किसी न किसी अंश तक तो स्वागत किया ही।

लेकिन 20 वीं सदी के प्रथम चरण में एक बड़ा परिवर्तन आया। पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति अब केवल चिकित्सा प्रणाली ही नहीं रह गयी, यह पश्चिमी देशों के आर्थिक साम्राज्य को विस्तार देने का बहुत बड़ा माध्यम बना ली गयी। दवा उद्योग लाभ की दृष्ट से हथियारों के कारोबार के बाद पहले नंबर का व्यापार माना जाने लगा। फलस्वरूप पश्चिम के साम्राज्यवादी देशों ने औषध बाजार पर अपना कब्जा जमाने के लिए जी-तोड़ कोशिश करनी शुरू कर दी। स्वाभाविक रूप से तीसरी दुनिया के तमाम देश उनके लिए सबसे बड़े बाजार साबित हुए। इसलिए वहाँ अपने कारोबार चलाने के लिए पश्चिमी दवा पद्धति को थोपा गया।

इस पद्दति को स्थायी रूप देने के लिए इन देशों की स्वदेशी चिकित्सा पद्धतियों को खत्म करना जरूरी था, जिनके रहते एलोपैथी का विकास संभव नहीं था। साम्राज्यवादी देशों ने एक-एक करके शासित देशों की चिकित्सा पद्दतियों को यह कहकर नकारना शुरु किया कि वे पुरातनपंथी हैं तथा मानव पीड़ाओं का इलाज कर पाने में सक्षम नहीं हैं। कि साम्राज्यवादी शक्तियों की इन साजिशों के चलते कितनी स्वदेशी औषध प्रणालियों ने दम तोड़ दिया और कितनी आज भी तोड़ रहीं हैं, इसका आसानी से अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

पश्चिम में यह नई चिकित्सा पद्धति समाज की जरुरतों एवं वहाँ की परिस्थितियों के मुताबिक भले ही उपयोगी ठहरती हो लेकिन भारत जैसे तीसरी दुनिया के तमाम सारे देशों के सामाजिक परिवेश, जलवायु एवं अन्य परिस्थितियों के न तो ये पूरी तरह अनुकूल होती हैं और न ही करोड़ों गरीब मरीजों का इलाज कर पाने में सक्षम हैं। बल्कि उल्टे इसने तमाम स्वास्थ्य संबंधी जटिलताओं को जन्म दिया हैं।

द्वितीय महायुद्ध के बाद साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की पुरानी दीवारों तो ढह गयीं लेकिन उसके स्थान पर साम्राज्यवादी ताकतों ने नव-स्वाधीन देशों के शोषण के लिए ऐसा रूप अख्तियार किया जो बहुत ही जटिल और अदृश्य-सा था। यह रूप कमोवेश समूची दुनिया को आज अपने कब्जे में ले चुका है। यह रूप कोई और नहीं बल्कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों का हैं।

भारत जैसे देश में करोड़ो गरीबों को सस्ता उपचार देने के बहाने घुसने वाली, विदेशी दवा कंपनियाँ मरीजों की जेब काट करके अरबों रुपया प्रतिवर्ष बाहर भेज रही है, और दवा के नाम पर देती हैं क्य – जहर, फालतु टॉनिकों की बोतलें और हजारों-हजार गैर-जरूरी दवाएँ। इन कंपनियों ने भारत समेत तीसरी दुनिया के गरीब मुल्कों को कूड़दान समझ रखा है जहाँ पर ये अपनी उन

हजारों दवाओं का निर्माण और बिक्री करती हैं जिन पर, प्राण-घातक प्रभावों के कारण, उनके स्वयं के देश के साथ-साथ दुनिया के तमाम देशों में प्रतिबंध लगा होता है।

यह कैसी विडम्बना है कि मानवता को शारीरिक पीड़ाओं से निजात दिलाने के लिए खोजी गई नई चिकित्सा पद्धति को बहुराष्ट्रीय निगमों ने मौत के व्यापार में बदल दिया। विश्व स्वास्थ्य संगठन भी इस बात को स्वीकार करता है कि दवा बनाने वाली दुनिया की बड़ी बहुराष्ट्रीय निगमें अपने मुनाफे के लिए गरीब मुल्कों में हजारों- हजार अनाप सनाप दवाएँ ठूँस रही हैं जो रोगों से मुक्ति दिलाने के बजाए रोगियों के प्राण ले लेती हैं।

भारतीय दवा उद्योग पर कब्जा

आजादी के बाद 1948 की राष्ट्रीय औद्योगिक नीति ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भारत की आर्थिक दुनिया में फलने-फूलने का भरपूर अवसर दिया। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू की मिश्रित अर्थव्यवस्था, पश्चिम के चमचमाते औद्योगिक मॉडल के प्रति उनकी रीझ एवं गांधी की कुटीर अर्थव्यवस्था के प्रति उनके विकर्षण ने भारत को यूरोप की विकासवादी अवधारणा के रास्ते पर चलने के लिए मजबूर कर दिया। संसद में नेहरू के बयान ने विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को और अधिक प्रोत्साहित किया। नेहरु ने विदेशी पूँजी निवेश और विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को स्वागत करते हुए कहा था कि इससे विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में एवं अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में मदद मिलेगी। ऐसी स्थिति में भारतीय अर्थव्यवस्था में पश्चिमी देशों को घुसने का पर्याप्त मौका मिला। उत्पादन और वितरण के क्षेत्र में इंग्लैण्ड और अमेरिका की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने बड़ी तेजी से घुसपैठ करनी शुरु की। अस्त्र निर्माण के बाद इन कम्पनियों के लिए फायदे का दूसरा बड़ा क्षेत्र औषध का था। मौके का फायदा उठाते हुए इन कम्पनियों ने दवा उद्योग पर कब्जा करना शुरु कर दिया। चूंकि दवा उद्योग के क्षेत्र में भारत की कोई अलग औद्योगिक नीति नहीं थी इसलिए 1948 की औद्योगिकरण की प्रक्रिया तेज करने के लिए सामान्य औद्योगिक नीति में विदेशी एवं भारतीय उद्योगों के बीच कोई भेद-भाव नहीं बरता जायेगा तथा दोनों को समान रूप से सुविधायें मुहैया करायी जायेंगी। इसके पीछे यह भी अवधारणा काम कर रही थी कि देश का नये औषध विज्ञान(एलोपैथी) से परिचय हो सकेगा, यह उसकी तकनीक सीख सकेगा तथा बहुराष्ट्रीय निगमें भारत की करोडों बीमार जनता के लिए पूरी तरह से दवाएँ उपलब्ध करायेंगी।

1948 की राष्ट्रीय औद्योगिक नीति ने हमार देश में बहुराष्ट्रीय निगमों की बाढ़ ला दी। इन निगमों ने स्वदेशी दवा उद्योग पर घातक प्रहार किया, बाजार पर कब्जा किया और संचार माध्यमों के जरिए पाश्चात्य दवा संस्कृति को हमारे अन्दर स्थापित कर दिया।

आजादी के पहले देश में आयुर्वेदिक औषध पद्धति का ही प्रचलन था। यद्यपि अंग्रेजों ने पश्मिची दवा पद्धति की नींव डाल दी थी। कुछ लाइलाज या प्राणघातक बीमारियों जैसे टी.बी, हैजा, मियादी बुखार का एलोपैथी में इलाज संभव हो सकने के कारण इसे आगे बढ़ने का बल मिला। ऐसा नहीं था कि भारतीय दवा पद्धति में इनका इलाज नहीं था बल्कि अंग्रेजों ने इसके विकास को

हतोत्साहित किया। दवा उद्योग के क्षेत्र में अंग्रेजों की घुसपैठ 1924 में शुरु हो गयी थी जब ब्रिटिश कंपनी ग्लैक्सो ने यहाँ अपना कारोबार शुरु किया था। लेकिन फिर भी यहाँ अंग्रेजी दवा कंपनियों की जड़ जम नहीं पायी थी। एलोपैथी के क्षेत्र में भारतीय वैज्ञानिक अनभिज्ञ तो थे नहीं। इसके लाभ को मुद्दे नजर रखकर इस सदी की शुरुआत में ही आचार्य पी.सी राय एवं प्रो.टी. के. गज्जर ने फार्मास्यूटिकल उद्योग की स्थापना की थी। यहाँ की प्रमुख बीमारियों को देखते हुए सेरा, वैक्सिन तथा मलेरिया प्रतिरोधी दवाओं की खोज तथा उसका निर्माण किया गया। बंगाल इसका केन्द्र बना। यही नही द्वितीय महायुद्ध के पूर्व यूरिया स्टीबमाइन की खोज तथा राल्फिया सर्पेन्टीना पर शोध चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान साबित हुआ। पश्चिमी बंगाल के डॉ. घोष का पेन्सिलीन के निर्माण में नया योगदान स्वदेशी दवा तकनीक के विकास में काफी महत्व का है। इस तरह स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अन्य क्षेत्रों की भाँति दवा उद्योग के भी क्षेत्र में राष्ट्रीयता का संचार हुआ था और बिना विदेशी मदद के भारतीय औषध (फार्मास्यूटिकल) उद्योग को विकसित करने का संकल्प लिया गया था।

लेकिन इसके साथ ही साथ बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भी अपना कारोबार बढ़ाने के लिए कार्यरत थीं। 1948 की भारत सरकार की औद्योगिक नीति ने तो उनके लिए रास्ता खोल दिया। विज्ञापनों एवं अन्य प्रचार के जरिये बाजारों पर कब्जा करने की पारराष्ट्रीय निगमों की आक्रमणकारी नीति ने आयुर्वेदिक दवा पद्धति को तो प्रचलन से बाहर कर ही दिया, भारतीय फार्मास्यूटिकल उद्योग को भी काफी पीछे छोड़ दिया। आत्मनिर्भर राष्ट्रीय दवा उद्योग के विकास के सारे प्रयासों पर पानी फिर गया। 50 के दशक में दवा के क्षेत्र में दुनिया की कुछ बड़ी बहुराष्ट्रीय निगमों ने देश में अपना कब्जा जमा लिया। अमेरिका की फाइजर कंपनी, स्विटजरलैण्ड रोश, अमेरिका की सीबा गायगी तथा बेयर इण्डिया जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भारत में अपने को स्थापित कर लिया। इसका एक कारण और था। आधुनिक दवा उद्योग की बुनियाद मूल रासायनिक उद्योग की बुनियाद पर खड़ी है और यह स्पष्ट है कि साम्राज्यवाद ने अपने औपनिवेशिक शोषण के उद्देश्य से इस देश में मूल रासायनिक उद्योग का स्वाभाविक विकास नहीं होने दिया तथा वैज्ञानिक · अनुसंधान और कारीगरी की शिक्षा को पंगु बनाकर रख दिया। नये उपकरणों से सज्जित दवा कंपनियों की तीव्र प्रतियोगिता में घरेलू और देशी दवा उद्योगों का पुनः ह्रास होने लगा।

सन् 1948 में दवा की कुल बिक्री 10 करोड़ की थी जो 1982 में बढ़कर 1200 करोड़ हो गयी और 1992-93 में 7500 करोड़ हो गयी। इसमें 80 प्रतिशत हिस्सा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथ में था। 1975 में केन्द्रीय सरकार द्वारा गठित हाथी कमेटी ने दवा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के राष्ट्रीयकरण की सिफारिश की थी। हाथी कमेटी की रिपोर्ट में कहा गया है कि "सामान्य पूंजी लगा कर ये कंपनियाँ अपनी औषधियों की बिक्री कर अत्यधिक मुनाफा विदेशों को भेज चुकी हैं। तथा बेहिसाब निजी पूंजी में वृद्धि की है"।

गैट समझौता और नया पेटेन्ट कानून

गैट समझौता होने से और भारतीय पेटेन्ट कानून – 1970 के बदले जाने से भारतीय दवा उद्योग पूरी तरह नष्ट हो जायेगा और भारतीय दवा बाजार पर एकाधिकारवादी बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियाँ छा जायेगी। गैट समझौता में सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा बौद्धिक सम्पदा कानूनों (ट्रिप्स) को लेकर है जिसके कारण हमारा 1970 का भारतीय पेटेन्ट कानून पूरी करह बदल जायेगा। 1 जनवरी 95 को सरकार ने अक अध्यादेश के जरिए नया पेटेन्ट कानून लागू भी कर दिया था। हालांकि देशव्यापी विरोध के कारण नया पेटेन्ट कानून संसद से मंजूरी नहीं पा सका।

1956 में अंग्रेजों ने पेटेन्ट व्यवस्था लागू की थी। 1911 में भारतीय पेटेन्ट और डिजाइन एक्ट बनाया गया जिसका उद्देश्य भारतीय बाजार को ब्रिटिश उद्योगों के अधीन बनाना था। ब्रिटिश पेटेन्ट धारकों ने भारत में ऊँची कीमत वाले निर्यात द्वारा हमारे बाजारों का शोषण किया और करोड़ों रूपये कमाये थे। यह लाजिमी था कि यह शोषण दवा क्षेत्र में भी होता । आजादी के पहले और बाद में भी दवाओं का उत्पादन बहुत और देश मुख्यतः आयात पर ही निर्भर था। कोई नई दवा आती थी तो वह पेटेन्ट धारकों की मर्जी के अनुसार ही आती थी। ऐतिहासिक दृष्टि से विदेशी कंपनियों ने भारत में अपने पेटेन्ट पंजीकृत नहीं करवाये। 1947 से 1957 के बीच भारत में कराए गये 1704 दवा पेटेन्टों में 99 प्रतिशत पेटेन्ट विदेशी नागरिकों के पास थे और एक प्रतिशत से कम को भारत में व्यापारिक उपयोग में लाया गया।

1970 का 'भारतीय पेटेन्ट कानून' हमारे हित के मुख्य क्षेत्रों की रक्षा करने के लिए बनाया गया था। इसमें केवल चार क्षेत्रों- दवा उद्योग, कृषि रसायन, भोजन और विशिष्ट रसायनों के मामले में कानून ने 7 वर्ष के लिए प्रक्रिया पेटेन्ट की अनुमति दी, लेकिन उत्पाद पेटेन्ट की अनुमति नहीं दी है। मुख्य बात यह है कि इस कानून में एकाधिकार को रोकने के लिए 'स्वतः लाइसेंस के अधिकार' का प्रावधान किया गया है। 1970 के पेटेन्ट कानून को अंकटाड ने प्रगतिशील कानून घोषित कर उसे अन्य देशों के लिए भी एक माडल बताया। इसी कानून का नतीजा था कि 1970 के बाद उद्योग आगे बढ़ा। परन्तु भारतीय दवा उद्योग से योग्यता के आधार पर स्पर्धा करने में असमर्थ होने पर ये 'मुक्त बाजार' के वकील अब निराश होकर अपना एकाधिकार जमाने की फिराक में हैं।

भारतीय पेटेन्ट कानून-1970 के लागू होने के बाद देशी दवा उद्योग में अच्छी प्रगति हुई और बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर निर्भरता कम होने लगी। 1974 में दवा उत्पादन 500 करोड़ रूपये से बढ़कर 1991 में 4000 करोड़ और 1994 में 6000 करोड़ रूपये का हो गया था। इसी प्रकार 1985-86 से 1991-92 के बीज 6 वर्षों की अवधि में हमारा दवा निर्यात 140 करोड़ रूपये से बढकर 1281 करोड़ रूपये का हो गया था। 1991-92 में 76 करोड़ रूपये की दवाइयाँ अमेरिका को निर्यात की गयी। भारतीय दवा कंपनियों को जो भी सफलता मिली उसके पीछे पेटेन्ट कानून - 70 का बहुत हाथ रहा।

गैट समझौते का सहारा लेकर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ इस पेटेन्ट कानून को बदलवाना चाहती हैं, उनका कहना है कि भारतीय दवा कंपनियाँ उनके फार्मूलेशन्स चुरा कर दवाइयों का उत्पादन कर रही हैं। हालाँकि यह सही नहीं है। 1970 के पेटेन्ट कानून के मुताबिक केवल 'प्रक्रिया पेटेन्ट' का फायदा देशी कंपनियों का मिला। परंतु अब गैट के मुताबिक 'उत्पाद पेटेन्ट' लागू हो जायेगा तो बहुराष्ट्रीय कंपनियों का अधिकतर दवाइयों पर अधिकार हो जायेगा। पेटेन्टीकृत दवाइयों का प्रतिशत नीचे सूची में दिया गया हैं, जिससे हम अन्दाजा लगा सकते हैं कि नया पेटेन्ट कानून लागू हो जाने के बाद बहुराष्ट्रीय कंपनियों की स्थिति कितनी मजबूत हो जायेगी। भविष्य में बनने वाली सभी दवाइयों पर पेटेन्ट अधिकार लागू होंगे जो बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कब्जे में रहेंगे। नये पेटेन्ट कानूनों का प्रभाव होगा

(1) दवाइयों के दाम 5 से 20 गुना और अधिक हो जायेंगे।
(2) दवाइयों की आपूर्ति प्रभावित होगी क्योंकि अब यह आयात पर ज्यादा निर्भर होगी।
(3) दवा उद्योग में नये पूंजी निवेश पर असर पडेगा।
(4) सरकार द्वारा संचालित राष्ट्रीय स्वास्थ्य रक्षा कार्यक्रम जो उन नागरिकों के लिए चलाए जाते हैं जो अपने स्वास्थ्य की आवश्यकताओं के लिए खर्च नहीं कर सकते, प्रभावित होंगे।
(5) राष्ट्रीय दवा उद्योग का विकास प्रभावित होगा।
(6) राष्ट्रीय शोध एवं विकास प्रभावित होगा।

आज दुनिया के दवा उत्पादन के 90% हिस्से पर 30 बड़ी बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियाँ अपना अधिकार रखती हैं और अनुचित पेटेन्ट व्यवस्था और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की रक्षा के नाम पर, 90 विकासशील देशों, जहाँ दवा का स्थानीय उत्पादन नहीं है और वे अधिकतर आयात पर निर्भर करते हैं, की असहाय गरीब और निरीह जनता का शोषण कर रही हैं। इन सभी 90 देशों में विकसित देशों के ही पेटेन्ट कानून लागू हो चुके हैं जिन्हें मानने का कारण वे 2000% अधिक मूल्य देकर अपना शोषण करवा रहे हैं। इण्डियन ड्रग्स मैनुफेक्चर्स एसोसियेशन के अध्यक्ष श्री.आई.ए. मोदी कहते हैं कि "भारत सहित करीब 15 विकासशील देश ऐसे हैं जो अपनी दवा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए फार्मूलेशनो के उत्पादन में लगभग आत्मनिर्भर हैं। इन देशों में भी भारत ही एक मात्र देश है जहाँ दवा उत्पादन अभी भी देशी उत्पादकों के हाथ में है। अन्य 14 देशों में दवाइयों का मुख्य उत्पादन या तो सीधे बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा नियन्त्रित होता है या बहुराष्ट्रीय कंपनियों से लाइसेंस प्राप्त राष्ट्रीय इकाइयों द्वारा होता है जिनकी दवाइयों के बिक्री मूल्य के प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ नियन्त्रित करती हैं। भारत इसका अपवाद है यहाँ 60% से अधिक दवा फार्मूलेशन और 80% से अधिक बल्क दवाएं पूरी तरह से राष्ट्रीय इकाइयों द्वारा उत्पदित के कारण और भारत में 1970 के पेटेन्ट कानून के कारण दवा मूल्य संसार में सबसे सस्ते हैं। मूल्यों में 500% से 2000% तक का अन्तर है।

जान लेवा दवाओं का व्यापार

हमारे देश में इस समय लगभग 515 दवाएँ ऐसी हैं जो बाजार में लगभग 8000 विभिन्न नामों से बिक रही हैं। इन दवाओं पर दुनिया के तमाम देशों में पाबन्दी लगायी जा चुकी है तथा इनके निर्माण और बिक्री को घातक अपराध घोषित किया जा चुका है। डाक्टरों और वैज्ञनिकों का कहना है कि ये दवाएँ प्राणघातक हैं और आदमी के रक्त को प्रदूषित कर कैंसर, लकवा, अंधापन, विकलांगता जैसी भयंकर बीमारियों को जन्म देती हैं तथा शरीर की रोग से लड़ने की क्षमता खत्म कर देती हैं। ये दवाइयाँ आने वाली पीढ़ियों में शारीरिक तथा मानसिक-विकृतियाँ भी पैदा करती हैं। यह गम्भीर चिन्ता का विषय है कि दुनिया के अन्य तमाम देशों में "जहर" घोषित की जाने वाली कुछ दवाएँ हिन्दुस्तान में खुली बिक्री की इजाजत पा चुकी हैं। यहाँ कुछ ऐसी दवाओं के नाम दिये जा रहे हैं जो दूसरे तमाम देशों में प्रतिबंधित हैं लेकिन हमारे यहाँ बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा बनायी और बेची जाती है। इन दवाओं को मुख्य रूप से में एण्ड बेकर, सीबा गायकी, बारोजवेलकम, पार्क डेविस, ज्योफ्रीमैनर्स, फाइजर, हेक्स्ट, सैण्डोज, रोस, स्केफ, एस.जी. फार्मास्युटिकल, ग्लैक्सों, बूट्स कंपनी, ईस्ट इंडिया कंपनी तथा इंफार इण्डिया कंपनियाँ बनाती हैं। इन दवाओं को बेचकर ये कंपनियाँ देश का अरबों रूपया प्रतिवर्ष बाहर भेज रही हैं।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने ऐसे कई सम्मिश्रण बनाये हैं जो कि निरर्थक होने के साथ-साथ हानिप्रद भी होते हैं। मिसाल के तौर पर क्लोरोफेनिकाल तथा स्ट्रेप्टोमाइसिन का सम्मिश्रण जो पेचिस में दिया जाता हैं। विशेषज्ञ डॉक्टरों का

कहना है कि यह सम्मिश्रण बहुत ही अतर्कसंगत और नुकसानदेह है, फायदा बिल्कुल नहीं औषध सलाहकारी समिति की 1980 की सिफारिश में क्लोरोफेनिकाल के सभी एफ.डी. सम्मिश्रणों पर रोक लगा दी गयी थी। लेकिन दुःख कि बात है कि इस रोग में उक्त सम्मिश्रण शामिल नहीं था। फलतः आज भी यह खुले बाजारों में उपलब्ध है। इसी तरह पेंसिलीन और स्ट्रेप्टोमाइसिन, पेंसिलीन और सल्फानामाइड्रस, विटामिन्स और एनाल्जिक्स, टेट्रासाइक्लीन एवं विटामिन सी, आदि के सम्मिश्रण भी बेहद नुकसानदेह हैं। लेकिन सारे सम्मिश्रण बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा तैयार किये और आपूर्ति किये जाते हैं।

खतरनाक गर्भ निरोधक बहुराष्ट्रीय साम्राज्यवाद के गुप्त हथियार

बहुराष्ट्रीय कंपनियों, विश्व बैंक और अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा थोपे गये संरचनात्मक समायोजन · कार्यक्रमों की अनिवार्य शर्त है जनसंख्या नियंत्रण। हालांकि इस शर्त को लोगों की जिंदगी बेहतर बनाने से कोई मतलब नहीं पर यह शर्त सुनिश्चित करती है कि हर हथकण्डा अपना कर हर हालत में विकासशील देशों की जनसंख्या को नियंत्रित किया जाए और साथ में बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा बनाये जा रहे खतरनाक गर्भ निरोधकों को बेचकर भारी मुनाफा भी कमाया जाए। पिछले तीन दशकों से सरकार का परिवार नियोजन कार्यक्रम अमेरिकी आर्थिक सहायता से जुड़ी शर्तों के अनुसार चल रहा था। जिसके लिए सरकार ने गर्भ निरोधकों के स्थान पर नसबंदी पर जोर

दिया, परंतु जोर जबरदस्ती नसबंदी करने के राजनैतिक दुष्परिणाम सामने आये तो यह नीति त्याग दी गयी और गर्भ निरोधक दवाइयों को प्रोत्साहन दिया गया।

भारतवासियों को गेहूँ-चावल के बीच चुनाव कर भरपेट खाना दिलाने में असमर्थ रही सरकार इस बात के लिए तैयार थी कि इन भूखी औरतों को दुनिया की नई गर्भ निरोधक दवा मिले। 60 के दशक में इजाद ज्यादातर गर्भ निरोधक, हार्मोन पर आधारित लंबी अवधि तक असर रखने वाले रसायन ही थे। इनमें कृत्रिम हार्मोन इस्ट्रोजन और प्रोजेस्ट्रान के अलग-अलग मिश्रणों से बने गर्भ निरोधक शामिल थे, जिन्हें खाने की गोलियों से लेकर सुइयों,चमड़ी के अन्दर रोपे जाने वाले कैप्सूल, योनि में रखे जाने वाले छल्लों, नाक में छिड़की जाने वाली दवाइयों के रूप में इस्तेमाल किया गया। इस्ट्रोजन व प्रोजेस्ट्रान के संयोग से बनी ये दवाइयाँ गम्भीर बीमारियों का कारण बनीं, जिनमें दिल व रक्तचाप की बीमारी, थक्के जमने की बीमारी, कैंसर, पाचन संबंधी गड़बड़ियाँ, भ्रूण पर विपरीत असर वाली बीमारियाँ शामिल थी। इसी दौरान दो नई प्रकार की सुइयों का भी अविष्कार हुआ। जर्मनी की 'शेरिंग ए जी' नामक कंपनी द्वारा बनायी 'नेट-इन' व अमेरिका की अपजान कंपनी द्वारा बनाई 'डिपो प्रोवेरा'। नेट इन और डिपो प्रोवेरा सुइयों के गंभीर प्रभाव औरतों के शरीर पर पड़ते हैं, सुई लगवाने के बाद औरतों का शरीर फूल जाता है, चक्कर आते है, सरदर्द की शिकायत, थकान, भूख न लगना अथवा अत्यधिक भूख लगना, वैवाहिक संबधों और किसी को हर समय खून रिसता रहता है। अगर वे बच्चे को स्तनपान करा रही हैं तो दूध की मात्रा व गुणवत्ता पर असर पड़ता है। पेट व स्तनों को छूने से दर्द, घबराहट व उदासी की बीमारी, एलर्जी, ह्रदय रोग खून के थक्के जमने · की बीमारी भी हो सकती है। कुल मिलाकर डेपो प्रोवेरा के निर्माता ने 78 दुष्प्रभावों को स्वीकार किया है। एक बार लगवाने के बाद दुबारा औरतें इनके पास फटकती भी नहीं। परंतु इनकी निर्माता बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर कोई असर नहीं हुआ क्योंकि इन्होने विकासशील देशों में अपने बाजार ढूंढ लिये, जहाँ की सरकारें पहले से ही जनसंख्या नियंत्रण के लिए हाथ पैर मार रही थी। डिपो प्रोवरा के परीक्षणों से ही इतनी ऊपर तक पहुँच थी कि ये गर्भ निरोधक बिक्री के लिए बाजारों में आ गये। अमेरिका में डॉक्टर काली चमड़ी की किशोरियों को उस समय से डिपो प्रोवेरा लगाते चले आ रहे हैं जब वहाँ की सरकार ने इसे स्वीकृति तक नहीं दी थी। इसी तरह न्यूजीलैंड के आदिवासियों व इंग्लैण्ड के अश्वेतों को यह सुई लगाई जा रही है, और अब तीसरी दुनिया के अन्य मुल्कों में इसका प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। डिपो प्रोवरा की भुक्त भोगी वे सभी मनुष्य प्रजातियाँ हैं जिनकी संख्या को सीमित रखना श्वेत नस्ल की अगुवाई बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

एड्स और कण्डोम का व्यापार

एड्स का हल्ला मचा कर बहुराष्ट्रीय कंपनियों (साथ ही साथ देशी कंपनियों ने भी) कण्डोम का बाजार खड़ा किया है और सौ करोड़ रूपये का सालाना मुनाफा कम रही हैं। हालांकि एड्स खतरनाक बीमारी है और यौन संसर्ग के अलावा कई अन्य तरीकों से भी इसका प्रसार होता है। जैसे इन्जेक्शन की सुई द्वारा, रक्त लेने से एवं पसीने के सम्पर्क द्वारा। परन्तु बहुराष्ट्रीय कंपनियों की शह पर एड्स को रोकने के जिन तरीकों को ज्यादा प्रचारित किया जा रहा है उनमें हैं सुरक्षित सम्भोग

और कण्डोम का प्रयोग। डॉक्टर लार्ड ओ कलिंग्स के अनुसार एक बार के यौन सम्पर्क से 0.1-1 प्रतिशत, सुई से 0.5-1 प्रतिशत, रक्त चढ़ाए जाने से 0.9 प्रतिशत एड्स होने की सम्भावना रहती है। इस तरह संक्रमित व्यक्ति के साथ सम्भोग या सुई के इस्तेमाल और रक्त चढ़ाने से एड्स होने की बराबर सम्भावनाएं रहती हैं। देश में यौन संबन्धों के लायक सिर्फ 30% लोग ही हैं जो अधिकतर अपने जीवन साथी के अलावा किसी अन्य से यौन सम्पर्क नहीं बनाते। दूसरी तरफ बच्चे से लेकर बूढ़े तक इन्जेक्शन की सुई का प्रयोग करते हैं अतः इस रास्ते एड्स फैलने की सम्भावनाएं बहुत अधिक हैं। इसके अलावा रक्तदान द्वारा इस बीमारी का होना लगभग तय है और अभी भी हमारे देश में 50% मामलों मे रक्त बिना जांच के ही चढ़ा दिये जाते हैं। भारत में विशेष स्थितियों में उपर्युक्त दोनों तरीकों से एड्स प्रसार की ज्यादा सम्भावनाओं को नजर अंदाज कर यौन सम्पर्कों को ही मुख्य जिम्मेदार मानना पश्चिमी का प्रभाव और कण्डोम निर्माता कम्पनियों की पहुंच का ही परिणाम है। विलासी उपभोक्तावादी संस्कृति के इस दौर में कण्डोम संस्कृति और उस का प्रचार विवाहेत्तर यौन संबंधों को बढ़ाकर इस बीमारी की जड़ को हरा ही बनायेंगे।

हमारे देश में लगभग 40 करोड़ रूपये का कण्डोम देशी कंपनियाँ और इतना ही कण्डोम विदेशी कंपनियाँ बेच रही है। विदेशी कण्डोमों के बारे में यह बात खास तौर से उल्लेखनीय है कि 1982 से ही सरकार ने इनके आयात पर से सीम शुल्क समाप्त कर दिया था और उस फैसले के बाद ही देश का बाजार विदेशी कण्डोमों से भर गया। करीब 25-30 एजेन्सियाँ जापान, कोरिया, ताइवान, हांगकांग, थाइलैण्ड वगैरा से कण्डोम थोक के भाव मंगाती और बेचती हैं। करीब 20 देशी व 80 विदेशी ब्रांडो अर्थात 100 से ज्यादा ब्रांडो में 100 करोड़ से ज्यादा कण्डोम सालाना बिक रहे हैं।

खतरनाक टूथपेस्ट

ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा तैयार किये गये एक अध्ययन में इस बात पर गम्भीर असंतोष व्यक्त किया गया कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के गैंग ने किस प्रकार "दवा और कास्मेटिक एक्ट-1992" की धज्जियाँ उड़ा दी। इस कानून में फ्लोराइड मिले हुए टूथपेस्टों की बिक्री पर कुछ पाबन्दियाँ लगा दी गयी थीं। राष्ट्रीय पेयजल आयोग द्वारा तैयार किये गये इस दस्तावेज में ग्रामीण क्षेत्रों में फ्लोरोसिस नामक बीमारी(जिसमें हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं, दांत गिर जाते हैं) के खिलाफ लड़ रहे स्वास्थ्य कर्मियों एवं अन्य विशेषज्ञों को सचेत किया गया है। 90 पेज के इस दस्तावेज में कहा गया है कि फ्लोरोसिस नामक बीमारी उन क्षेत्रों में अधिक होती है जहाँ पेयजल में फ्लोराइड की मात्रा अधिक होती है।

बूचड़ खाने से खून और हड्डियाँ दवा कंपनियाँ ले जाती हैं

दिल्ली के ईदगाह बूचड़खाने से रोजाना निकलने वाला 13 हजार लीटर खून बड़ी-बड़ी दवार कम्पनियाँ टॉनिक बनाने के लिए ले जाती हैं। खासतौर पर गर्भवती महिलाओं के लिए पशुओं के खून से बनने वाला 'डेक्सोरेंज' टॉनिक बहुत लोकप्रिय है। खून ही नहीं, काटे गये पशुओं के

तकरीबन हर अंग का इस्तेमाल टूथपेस्ट, सरेस, फेवीकोल, चीनी के बर्तन, सनमाइका, इंसूलिन इंजेक्शन आदि बनाने में होता है। बूचड़ खाने में सब जानवरों का मिला जुला खून इकट्ठा किया जाता हैं। इसके बावजूद दवा बनाने वाली कंपनियों को खून की कमी पड़ती रहती है।

खून के साथ-साथ बाकी अंगो का इस्तेमाल भी दवाई और कई दूसरी चीजें बनाने में किया जाता है। इनकी हड्डियों को जलाकर उसका पाउडर टूथपेस्ट,चीनी के बर्तन और सनमाइका बनानें में इस्तेमाल किया जाता है।

मच्छर मार दवाएं घातक हैं

एक तरफ जहाँ अनुसंधानकर्ता मच्छरों से मुक्ति के लिए परेशान हैं वही दूसरी तरफ बहुराष्ट्रीय उद्योग मच्छर भगाने वाली दवाएं और अन्य उपकरण काफी बड़े पैमाने पर बनाने में लगे हुए हैं। मच्छरमार दवाओं और उपकरणों को बड़े पैमाने पर उत्पादित, विज्ञापित और बिक्री किया जा रहा है। करोड़ों अरबों डॉलर का इनका कारोबार हो गया हैं उपकरणों और दवाओं से मच्छर तो भागते हैं परंतु मानव स्वास्थ पर इनका गंभीर असर पड़ता है।

पिछले दिनों विश्व स्वास्थ्य संगठन ने बताया कि मच्छरों से बचने के लिए निकली अधिकतर दवाओं में मेल्फोक्कीन नामक रसायन होता है जो दिमाग और शरीर के लिए घातक हो सकता है। हमारे देश में मच्छरमार दवाओं में कुछ ऐसे कीटनाशकों का प्रयोग हो रहा है जो अन्य देशों में प्रतिबन्धित हैं। इसी कारण निर्माता कंपनियाँ कीटनाशक उत्पादों की सरंचना की जानकारी का खुलासा भी नहीं करतीं।

बाजार में बिक रहे इन मच्छऱमार ब्रांड़ो में विषैले रसायन 'डी-एथीलीन' का इस्तेमाल किया जा रहा है जिसके लगातार उपयोग से स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा हो सकता है। स्वास्थ्य विशेषज्ञों के अनुसार बिजली से चलने वाले उपकरणों में जो धुँआ निकलता है उसमें फोसफीन नामक गैस से सिरदर्द, एलर्जी, नाक में खुश्की, होठों का सूखना, गले में खराश वगैरा हो जाती है। इसके लगातार प्रयोग से दम घुटने और साँस रूकने की स्थिति बन जाती है जो दिल और दमा के मरीजों के लिए घातक हो सकती है।

अनावश्यक दवाओं व गैर-जरूरी टॉनिकों का उत्पादन

भारत पारराष्ट्रीय निगमों द्वारा प्रतिबंधित अनावश्यक और नुकसानदेह दवाओं को खपाने का बहुत बड़ा बाजार रहा है। देश की जलवायु और यहाँ फैलने वाले विभिन्न रोगों के मुताबिक इन्होंने कभी भी दवाओं का निर्माण नहीं किया। भारत में मुख्य रुप से टी.बी., कुष्ठ रोग, आंत्रज्वर, पेचिस, फाइलेरिया के मरीज अधिक हैं। इस समय बाजार में 50 से 60 हजार प्रकार के फार्मूलेशन उपलब्ध हैं। लेकिन विडम्बना है कि टी.बी मलेरिया, पेचिस तथा फाइलोरिया जैसे रोगों की दवाओं की बाजार में कमी है। हाथी कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि 117 या 150 दवाएँ ही अत्यावश्यक हैं जो 89-90 प्रतिशत लोगों की रोग के व्याधि में काम आती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के

मुताबिक भारत में प्रचलित रोगों के इलाज के लिए मात्र 250 दवाओं की जरूरत हैं मूल उत्पादन जो व्यापक पैमाने पर दवाओं की जरूरतों को पूरा करता हैं, वह बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा बहुत ही कम तैयार किया जाता रहा हैं, यहाँ तक की लघु क्षेत्र से भी कम। सन् 1973 में इस देश में 5300 टन मूल रसायन (बल्क) का उत्पानद हुआ, इनमें से मात्र 10 प्रतिशत का उत्पादन साधन सम्पन्न टेकनॉलाजी के माध्यम से इन विदेशी और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने किया था। बाकि 90 प्रतिशत का उत्पादन भारतीय जनता और निजी संस्थाओं ने किया था। राष्ट्रीय क्षेत्र में 33 प्रतिशत उत्पादन हुआ।

इस बात में किसी संदेह की गुंजाइश नहीं कि विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने दवा उद्योग पर अपना एकाधिकार स्थापित करने एवं बेतहाशा मुनाफा कमाने की नीयत से समूचे नैतिक मानदंडो, राष्ट्रीय कानूनों और वायदों को तोड़ा है। भारत समेत गरीब मुल्कों को इन कम्पनियों ने अपनी जागीर बना रखा है। हमारे देश में जिन रोगों की बहुलता है और उनके इलाज के लिए दवाएँ आवश्यक हैं उनका उत्पादन ये कम्पनियाँ अपने फायदे की गणित सही करने के लिए न के बराबर करती हैं। इसके बदले ये ऐसी दवाओं और टॉनिकों का उत्पादन करती हैं जो गैर-जरूरी होता हैं। लेकिन जिसमें मुनाफे का प्रतिशत अपेक्षाकृत बहुत ज्यादा होता हैं।

आर्थिक दोहन

आजादी के बाद खासकर दवाओं के क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को न्योतने के पीछे जो उद्देश्य था वह एक साल के अन्दर चकनाचूर हो गया। देश को करोड़ो मरीजों के लिए पर्याप्त दवाओं की पूर्ति तो हो ही नहीं सकी, उल्टे एक वर्ष की अवधि (1951-52) के दौरान भारत को 15.6 करोड़ रूपये के मूल्य के बराबर दवायें आयात करनी पड़ी। इस गरीब देश की जनता की जेब से करोड़ों-अरबों रूपया रॉयल्टी के नाम पर इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के जरिये विदेश चला जाता है। साथ ही साथ इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की मुनाफे की राशि साल-दर-साल बढ़ती गयी।

स्वास्थ्य के व्यावसायीकरण की उनकी नीतियों ने भारतीय दवा कम्पनियों का भट्ठा बैठा दिया है। दवा के लाइसेंस पर प्रसाधन सामग्रियाँ तथा 90 फीसदी से अधिक गैर-जरूरी दवाएँ बनाने वाली कम्पनियाँ सबसे भ्रष्ट और क्रूर तरीके अपनाकर भारतीय बाजारों पर अपना कब्जा जमायी है। दूसरी तरफ सस्ती और अधिक उपयोगी विकल्प देने वाली भारतीय दवा कम्पनियाँ लगातार घाटे का शिकार होती जा रही हैं।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से मुक्त दवा-उद्योग की जरूरत

हमारे देश में एक से अधिक चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलन में हैं। सर्वप्रथम इस देश की मिट्टी और आबो-हवा से पैदा और यहाँ की परम्परागत सोच और सांस्कृतिक पहचान से जुड़ी हुई आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति हैं। इसी से मिलती यूनानी पद्धति है। अंग्रेजी, फ्रांसीसी एवं पुर्तगालियों के सम्पर्क

की बदौलत एलोपैथी एवं होम्योपैथी आयी। दो सौ सालों के औपनिवेशिक शासन और आजादी के बाद बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के शिकंजे ने हमारी अस्मिता को तोड़ा और वैज्ञानिक धरोहर को रौंदा। नतीजा यह कि एलैपैथी के मुकाबले भारतीय पद्धतियाँ पिछड़ते-पिछड़ते गुलामी की हालत में रह गयी हैं। सरकार ने आजाद भारत में सर्वप्रथम एलोपौथी पद्धति की शिक्षा एवं चिकित्सालयों के नियमन के लिए 1956 में भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद (इण्डियन मेडिकल काउंसिल) का गठन संसद से पारित एक आधिनयम के तहत किया। आधुनिक पद्धति में ही अनुसंधान हेतु आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (मेडिकल रिसर्च काउंसिल) पहले से ही गठित थी। कुछ अर्से बाद भारतीय एवं होम्योपैथी अनुसंधान की केन्द्रीय परिषद(सी.सी आर.एम.एच.) का गठन किया गया। लोकतान्त्रित दबावों के चलते 1970 में केन्द्रीय भारतीय चिकित्सा परिषद (सी.सी.आई.एच.) का गठन किया गया। इसके बाद भारतीय चिकित्सा एवं होम्योपैथी में अनुसंधान के लिए 1977 में आयुर्वेद एवं सिद्ध, यूनानी, होम्योपैथी, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों हेतु अलग-अलग केन्द्रीय अनुसंधान परिषदों का गठन किया गया। इस प्रकार वर्तमान में केन्द्रीय स्तर पर विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों की शिक्षा एवं चिकित्साभ्यास हेतु तीन परिषदें एवं अनुसंधान हेतु 6 परिषदें कार्य कर रही हैं। इसके अलावा सी.एस.आई.आर के साथ-साथ आई.सी.एल.आर भी कभी-कभी ऐसे कार्यक्रमों के साथ आगे आती हैं जो चिकित्सा एवं स्वास्थ्य से जुड़े हैं। देश में आधुनिक, भारतीय एवं होम्योपैथी के लगभग 104,120 एवं 94 कालेज चल रहे हैं।

कीटनाशकों का भी निशाना है हमारा स्वस्थ्य

कीटनाशक दवाइयों के छिड़काव वाले गेहँ के आटे की तली हुई पूरियाँ खाने वाले उत्तर प्रदेश के बरेली जिले के करीब डेढ़ सौ व्यक्तियों के मौत के शिकार बनने की घटना अभी जेहन में बरकरार है। हालत यह है कि इस तरह के छोटे-बड़े समाचार आये दिन सुर्खियों में पढ़ने को मिल जाते हैं। इन समाचारों से विचारक एक बार फिर चिंतित होने लगे हैं। संकर बीज के आगमन के बाद कीटनाशकों के उपयोग में तेजी से वृद्धि होने के कारण आज कुल खेती योग्य जमीन के चौथे भाग में इस जह का इस्तेमाल शुरु हो गया हैं। उसमें आधे से अधिक भाग तो डी.डी.टी.बी.एच.सी और मैलाथियोन का ही है। पचास के दशक में इन दवाइयों का वार्षिक उपयोग सिर्फ दो हजार टन था, जो आज बढ़ कर अस्सी हजार टन तक पहुँच चुका है। फिर भी ताज्जुब तो यह है कि जीव-जन्तु, रोग आदि से फसल को जो नुकसान होता था, उसका आकंड़ा, जो सन् 1976 में 3300 करोड़ टन था, वह आज बढ़कर छः हजार करोड़ टन हो गया हैं। सन् 1960-61 में 64 लाख हेक्टेअर में यह जहर डाला जाता था, अब उसके स्थान पर आठ करोड़ हेक्टेअर में डालने का यह नतीजा है। ओटावा स्थिति इंटरनेशनल डेवेलपमेंट रिसर्च सेंटर का दावा है कि तथाकथित विकसित देशों में ही कीटनाशकों के जहर से हर वर्ष दस हजार आदमी मर जाते हैं और दूसरे चार लाख आदमी तरह-तरह के विपरीत परिणामों से पीड़ित होते हैं। ऐसे जहरों को हम क्या कहेंगे- कीटनाशक या मानव भक्षक? इनके मुख्य शिकार खेत मजदूर होते हैं। पाश्चात्य देशों में जिन पर पांबदी लगाई गयई हैं, वैसे रसायन तीसरे विश्व में उड़ेले जाने के कारण यह परिस्थिति पैदा हुई है। महाराष्ट्र तथा आंध्रप्रदेश

में रूई(कपास) उगाने वाली पट्टी में इन कीटनाशकों के कारण खेत मजदूरों में अन्धत्व, कैंसर, अंगविकृतियां, लीवर के रोग तथा ज्ञानतन्तुओं के रोग होने के उदाहरण पाये गये हैं।

पेप्सी कोला-कोका कोला का सच सपनों के सौदागर

5 अगस्त 2003 को भारत के सभी टी.वी चैनलों एवं समाचार पत्रों में पेप्सी-कोला एवं कोका-कोला के बारे में एक भंयकर सत्य उद्घाटित हुआ। दिल्ली की एक वैज्ञानिक संस्था "सेन्टर फॉर सायनस एण्ड एनवायरमेंट" की खोजी रिपोर्ट में बताया गया कि पेप्सी एवं कोका-कोला के सभी ठंडे पेयों में अत्यन्त जहरीले एवं खतरनाक कीटनाशक रसायन मिले हुए हैं। उपर्युक्त संस्था की प्रयोगशाला में पेप्सी एवं कोका-कोला के 12 नमूनों की जांच की गयी। इसमें पाया गया कि इन सभी नमूनों में बहुत अधिक मात्रा में रासायनिक कीटनाशक जैसे क्लोरोपायरीफास, मैलाथियान, डी.डी.टी., लिन्डेन आदि मिले हुए हैं। ये सभी कीटनाशक शरीर के लिए अत्यन्त ही हानिकारक होते हैं। इन कीटनाशकों का शरीर के स्वास्थ्य पर बहुत ही खराब असर होता हैं। इन कीटनाशकों का लीवर,किडनी, शरीर के प्रतिरोधक तंत्र, प्रजनन तंत्र, तंत्रिका तंत्र, श्वसन तंत्र आदि पर बहुत बुरा असर होता हैं। उदाहरण के लिए लिन्डेन नामक कीटनाशक से शरीर में कैन्सर होता हैं तथा शरीर की सभी ग्रंथियों को भारी नुकसान पहुँचता है। लिन्डेन कीटनाशक की 40 मिली मात्रा किसी भी महिला या पुरुष की क्षमता को समाप्त कर देती हैं। इस लिन्डेन से · लीवर का कैंसर तथा किडनी का कैंसर भी होता है। शरीर के ह्रदय को रक्त देने वाली नलियों को भी लिन्डेन क्षतिग्रस्त कर देता हैं। इसी तरह डी.डी.टी. नाम का रासायनिक कीटनाशक पुरुषों के वीर्य में शुक्राणुओं की संख्या को बहुत कम कर देता हैं तथा स्त्रियों में वक्ष कैंसर को पैदा करता है। क्लोरोपायरीफॉस नामक जहरीला कीटनाशक मनुष्य के तंत्रिका तंत्र को नष्ट कर सकता है तथा दिमागी विकास को रोक देता है। इस जहरीले कीटनाशक से मनुष्य शरीर में मांसपेशियाँ अत्यंत कमजोर हो जाती है। मैलाथियान नाम के रासायनिक जहर से जन्मजात शारीरिक विकलांगता आती है तथा शरीर के किसी भी हिस्से में पक्षाघात हो सकता है। 6 अगस्त 2003 को इस विषय पर लोकसभा में काफी हंगामा हुआ। लोकसभा के अनेक सदस्यों ने सरकार से मांग की, कि इस विषय पर स्पष्टीकरण दे और पूरे देश को बताये कि सच क्या हैं?

सराकर की ओर से जवाब देते हुए स्वस्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री सुषमा स्वराज्य ने लोकसभा में कहा कि जल्दी ही सरकार इस विषय पर जांच करायेगी। इसी तरह 21 अगस्त 2003 को राज्यसभा में भी बहस हुई। वहाँ भी मंत्री महोदया ने इसी तरह का आश्वासन दिया। अंत में लोकसभा अध्यक्ष के निर्देश पर संयुक्त संसदी समिति गठन करने का फैसला किया गया। यह संयुक्त संसदीय समिति पेप्सी-कोक में मिले हुए कीटनाशक रसायनों की जांच करने के लिए बनाने का तय किया गया। इस तरह 22 अगस्त 2003 को सरकार द्वारा पेप्सी-कोका कोला की जाँच के लिए संयुक्त संसदीय समिति के गठन की अधिसूचना जारी की गयी। इस संसदीय समिति में 10 सांसद लोकसभा से एवं 5 सांसद राज्यसभा से लिये गये, समिति के अध्यक्ष शरद पंवार को बनाया

गया। समिति में लोकसभा से अनंत कुमार, डा. सुधा यादव, रमेश चेन्नीथला, अवतार सिंह भड़ाना, के. येरन्ननायडु, ई. अहमद, रंजीत कुमार पांजा, अखिलेश यादव और अनिल बसु को लिया गया। इसी तरह समिति में राज्यसभा से एस.एस. अहलूवालिया, पृथ्वीराज च्वहाण, संजय निरूपम, प्रेमचन्द गुप्ता, प्रशांत चर्टजी को लिया गया। समिति को यह जांच करने की जिम्मेदारी दी गयी कि पेप्सी कोका-कोला के जो भी ब्रांड भारत में बिक रहे हैं उनमें कीटनाशक हैं या नहीं? साथ ही साथ समिति को यह जिम्मेदारी दी गयी कि सरकार को ठंडे पेयों की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए भी सुझाव दे। इस समिति के लिए डा.एस.के.खन्ना, डा. एन.पी. अग्निहोत्री, डा.जी. त्यागराजन को विशेषज्ञ के रूप में नियुक्त किया गया। इस समिति ने 4 फरवरी 2004 को अपनी रिपोर्ट संसद के सामने पेश की। इस रिपोर्ट को बनाने में संयुक्त संसदीय समिति के सामने कई मंत्रालय पेश हुए। देश के कई विशेषज्ञ एवं संस्थाओं की ओर से भी समिति को काफी जानकारियां दी गयी।

सेंटर फॉर सायन्स एण्ड एनवायरमेंट द्वारा मई 2003 में पेप्सी एवं कोका कोला के सभी ब्रांडों की जांच की गयी। जिसमें पाया गया कि यूरोपीय मानकों की तुलना में भारतीय पेप्सी एवं कोक में 21 गुना अधिक लिन्डेन (खतरनाक रासायनिक कीटनाशक), 42 गुना अधिक डी.डी.टी. , 72 गुना अधिक क्लोरोपायरीफॉस, 196 गुना अधिक मैलाथियान उपस्थित है। सी.एस.ई. संस्था की प्रयोगशाला में अमेरिक से लाये हुए पेप्सी एवं कोकाकोला के सभी ब्रान्डों की भी जांच की गयी। लेकिन इन अमरीकी नमूनों में कुछ भी रासायनिक कीटनाशक नहीं पाये गये।

संसदीय समिति के अनुसार भारत में कोका-कोला के 52 कारखाने हैं, जिनमें से 27 कारखाने कोका-कोला कंपनी के हैं तथा बाकी 25 कारखाने अन्य दूसरी भारतीय कंपनियों के हैं, लेकिन इनमें 38 कारखाने हैं जिनमें से 17 कारखाने कंपनी के स्वयं के हैं एवं 21 कारखाने अन्य दूसरी भारतीय कंपनियों के हैं, जिनमें पेप्सी-कोला के लिए उत्पादन होता हैं। पेप्सी एवं कोका-कोला कंपनियों द्वारा संसदीय समिति को दी गयी जानकारी के अनुसार पेप्सी एवं कोका-कोला के ठंडे पेयों की एक साल की कुल बिक्री 4000 करोड़ रूपये से अधिक हैं।

बहुराष्ट्रीय कंपनी का मकड़जाल

मानव समाज के लम्बे इतिहास में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का उदय एक ऐसी घटना है जिसने मनुष्य की जीवन शैली और अनुभव से परखे टिकाऊ मूल्यों को झकझोर दिया है। नवजात शिशु के भरपूर पोषण के लिए प्रकृति प्रदत्त माँ के स्तनपान की चिरकाल से चली आयी स्वास्थय परम्परा के स्थान पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियो द्वारा 'बेबी फूड़' को स्थापित करवा देना इसका एक उदाहरण मात्र है। राज्य, राष्ट्रीयता, धर्म, ईमान इन सब से ऊपर उठकर मुनाफा और आर्थिक साम्राज्य की हवस ने इन

कंपनियों को 'सुपरस्टेट' बना डाला है जो प्रकृति और मनुष्य दोनों के शोषण पर टिकी है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में – रोजमर्रा के उपभोक्ता सामान से लेकर युद्ध के विकराल हथियार बनाने तक- इनकी घुसपैठ हैं। विश्व के पर्यावरण को, विभिन्न क्षेत्रों के उद्भूत संस्कृतियों को इन कंपनियों ने रोड़ रोलर की तरह रौंद डाला हैं।

यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति ने पश्चिम के देशों को अपने उपनिवेश बनाने में बड़ी मदद दी। इस उपनिवेशीकरण ने पश्चिम के देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियों को तीसरी दुनिया के देशों में अपना व्यापार जाल फैलाने का भरपूर अवसर दिया। उपनिवेशी ताकतों की छत्र छाया में इन्होंने लातीनी अमरीका, अफ्रीका और एशिया के देशों से सस्ता कच्चा काल बटोरा और अपने मंहगे 'बने बनाए' माल से उनके बाजारों को पाट दिया। नतीजतन इन देशों की टिकाऊ अर्थव्यवस्था टूट गयी और सम्पन्न देश अविकसित देशों की श्रेणी में धकेल दिये गये। द्वितीय महायुद्ध के बाद उपनिवेशीकरण का जाल टूटा, पर विकास के नाम पर ये कंपनियाँ तीसरी दुनिया में अपनी घुसपैठ बनाए रहीं। उपनिवेशकाल में जो काम पुलिस-फौज के हथियार करते थे, उत्तर उपनिवेशकाल में वह काम विश्व बैंक और मुद्राकोष की सहायता से ऋण के हथियार द्वार किया गया। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को तीसरी दुनिया में निर्बाध रूप से अपने पाँव पसारने का कानूनी हक गैट के यूरूग्वे चक्र की समाप्ति पर बने विश्व व्यापार संगठन ने दे दिया जिसके तहत ये कंपनियाँ इन देशों से 'राष्टीय व्यवहार' पाने की हकदार बन गयी हैं।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने तीसरी दुनिया के देशों की आर्थिक स्वायत्ता को नष्ट कर दिया है तथा व्यापक पैमाने पर गैर-बराबरी, और उपभोक्तावादी अपसंस्कृति फैलाई है। अब तो विकसित देश भी इनके कारण बेरोजगारी और उसके फलस्वरूप फैलते सामाजिक तनाव के शिकार हो रहे है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बढ़ता मकड़जाल न केवल भारत में बल्कि पूरी दुनियां में मानवीय संस्कृति और सभ्यता के लिए खतरे की घंटी बन चुका है। इसलिए इनके खिलाफ चलने वाले इस अभियान में हम सभी एकजुट होकर आवाज उठायेंगे तो निश्चित रूप से भारतीय संस्कृति और सभ्यता की रक्षा कर सकेंगे।

राजीव दीक्षित जी

सेवाग्राम, वर्धा

बहुराष्ट्रीय कंपनियों का इतिहास

बहुराष्ट्रीय कंपनियों की जड़े मध्यकाल में वेनिस, अंग्रेज, डच व फ्रांसीसी व्यापारियों द्वारा स्थापित कंपनियों में मिलती हैं। प्राचीन सभ्यता में भी व्यापारियों द्वारा दूसरे देश में जाकर व्यापार करने के उदाहरण मिलते हैं। देश की सीमाओं को लांघकर दूसरे देशों में व्यापार करने प्रमाण

'मेसोपोटामिया सभ्यता' के समय के मौजूद हैं। लेकिन यह व्यापार मुख्यतः स्वतंत्र व्यक्तियों द्वारा ही किया जाता था। व्यापारी समूह बनाकर एक देश से दूसरे देश में अपने माल की बिक्री के लिए जाते थे, और आवश्यकता की वस्तुएं वहाँ से खरीद कर लाते थे। भारत का रोम के साथ व्यापार, भारत का बर्मा, मलाया (मलेशिया) चीन आदि के साथ व्यापार इसी श्रेणी में आता था। रोमन साम्राज्य के समय पार-राष्ट्रीय व्यापार खूब होता था, लेकिन व्यापारियों द्वारा साम्राज्य के पतन के बाद भारत का व्यापार चीन के साथ शुरू हुआ। मुख्यतः दक्षिण भारत का हिस्सा चीन के साथ व्यापारिक गतिविधियों में अधिक संलग्न था। व्यापार के इस स्वरूप में शोषण की कही कोई गंजाइश नही थी और न ही मेजबान व मेहमान देशों के बीच इस व्यापार को लेकर कोई झगड़ा हुआ करता था।

आधुनिक बहुराष्ट्रीय कंपनियों के चरित्र वाली दुनिया की सबसे पहली कंपनी 'The Muskovi Company' मानी जाती है। जिसकी स्थापना सन् 1553 में हुई थी। इस कंपनी ने अपनी स्थापना के 3 वर्षो बाद ही दुनिया के महत्वपूर्ण शहरों में अपने व्यापारिक प्रतिष्ठान स्थापित कर लिए थे। सन् 1553-1581 तक 'मस्कोवी कंपनी' ने अकूत मुनाफा कमाया और सन् 1581 में कम्पनी के अलमबरदारों ने एक और विशालकाय कंपनी 'The Turkey Company' को स्थापित कर लिया। इस 'टर्की कंपनी' की विशेषता थी कि इसने स्थापना के समय ही दुनिया के महत्वपूर्ण नगरों में अपने पाँव पसारे। ऐसा नहीं था कि 1553 से सन् 1581 तक 'मस्कोवी कंपनी' का व्यापारिक क्षेत्र में एकाधिकार रहा।

सन् 1600 में ईस्ट इण्डिया कंपनी भारत में व्यापार करने के लिए आयी। हालाँकि इस कंपनी की स्थापना ऐलिजाबेथ प्रथम के समय में ही हो चुकी थी, लेकिन इस कंपनी ने बहुराष्ट्रीय चरित्र सन् 1600 में ही ग्रहण किया। भारत आने से पूर्व इस कंपनी ने दुनियाँ के अन्य हिस्सों में भी पैर जमाने की कोशिश की थी लेकिन वह सफल नहीं हो सकी। उस समय दक्षिण-पूर्व एशिया में अनेक छोटी-मोटी डच कंपनियाँ अपना व्यापार कर रहीं थी। भारत में भी कुछ डच कंपनियों को प्रवेश हो चुका था। ईस्ट इण्डिया कंपनी ने सन् 1612 में ईस्ट इण्डिया कंपनी ने डच कंपनियों के साथ अम्बोनिया (इण्डोनेशिया) में एक युद्ध लड़ा था। इस युद्ध में ईस्ट इण्डिया कंपनी ने एक षड़यंत्र के तहत डच कंपनियों के अधिकारियों की सामूहिक हत्या करवा दी। सन् 1667 के आते-आते ईस्ट इण्डिया कंपनी ने डच कंपनियों का नामों-निशान मिटा दिया। सूरत के बंदरगाह पर कब्जा करने के लिए ईस्ट इण्डिया कंपनी का पूर्ण अधिकार हो गया। इसके बाद ही ईस्ट इण्डिया कंपनी का शिंकजा पूरे देश पर कसता चला गया।

सन् 1750 के बाद का दौर ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति का दौर था। जिसके दौरान उत्पादन की तकनीक में आमूल परिवर्तन आया। सन् 1600 से 1750 के बीच अंग्रेजी कंपनी ने, जिसमें ईस्ट इण्डिया कंपनी भी शामिल थी, अंग्रेजों को अकूत पूँजी का मालिक बना दिया। भारत व दक्षिण-पूर्व एशिया के अन्य देशों का शोषण करके अंग्रेजी बाजार में पैसे का प्रवाह अत्याधिक बढ़ गया। बाजार की ताकतें बाजार में ताकतवर होती गयी। मुद्रा का दबाव लगातार बढ़ने का परिणाम औद्योगिक क्रान्ति के रूप में सामने आया।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों का भारत में प्रवेश

भारत में विदेशी कंपनियाँ तीन तरीके से काम कर रही है। पहला, सीधे अपनी शाखायें स्थापित करके, दूसरा अपनी सहायक कंपनियों के माध्यम से, तीसरा देश की अन्य कंपनियों के साथ साझेदार कंपनी के रूप में।

जून 1995 तक प्राप्त आंकड़ों के अनुसार 350 से कुछ अधिक विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, अपनी शाखाओं या सहायक कंपनियों के रूप में देश में घुसकर व्यापार कर रही हैं। 20,000 से अधिक विदेशी समझौते देश में चल रहे हैं। औसतन 1000 से अधिक नये विदेशी समझौते प्रतिवर्ष देश में होते हैं। सन् 1972 के अंत तक देश में कुल 740 विदेशी कंपनियाँ थीं। जिनमें से 538 अपनी शाखायें खोलकर व 202 अपनी सहायक कंपनियों के रूप में काम कर रही थीं। इनमें सबसे अधिक कंपनियाँ ब्रिटेन की थीं। लेकिन आज सबसे अधिक कंपनियाँ अमेरिका की हैं। समझौते के अन्तर्गत काम करने वाली सबसे अधिक कंपनियाँ जर्मनी की हैं। 1977 में विदेशी कंपनियों की संख्या 1136 हो गयी।

आजादी के पूर्व सन् 1940 में 55 विदेशी कंपनियाँ देश में सीधे कार्यरत थीं। आजादी के बाद सन् 1952 में किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार ब्रिटेन की 8 विशालकाय कंपनियों के सीधे नियंत्रण में 701 कंपनियाँ भारत में व्यापार कर रही थीं। ब्रिटेन की अन्य 32 कंपनियाँ, भारतीय कंपनियों के साथ किये गये समझौतों के तहत कार्यरत थीं। ये 8 विशालकाय ब्रिटिश कंपनियाँ सन् 1853 से ही भारत में घुसना शुरू हो गयी थीं। ईस्ट इण्डिया कंपनी द्वारा सोची समझी रणनीति के तहत लायी गयी ये कंपनियाँ सन् 1860 तक ईस्ट इण्डिया कंपनी के भारतीय उपमहाद्वीप के शोषण के लिए धारदार हथियार बन चुकी थी। भारतीय उपमहाद्वीप में स्थापित हो जाने के बाद ये कंपनियाँ दुनिया के अन्य दूसरे देशों में शोषण करने चली गयीं।

ये 8 ब्रिटिश कंपनियाँ निम्न थीं –

1. एन्ड्रयूल एण्ड कंपनी
2. मेक्लाइड एण्ड कंपनी
3. बर्न एण्ड कंपनी
4. डंकन ब्रदर्स एण्ड कंपनी
5. आक्टेवियस स्टील एण्ड कंपनी
6. गिलैण्डर अर्बुदनाट एण्ड कंपनी
7. शा वालेस एण्ड कंपनी

भारत में जैसे-जैसे विदेशी पूँजी का निवेश बढ़ता गया वैसे-वैसे विदेशी कंपनियों की संख्या बढ़ती गयी। इसके साथ जुड़ा हुआ एक आश्चर्यजनक सत्य यह है कि जिन विदेशी कंपनियों ने भारत में

पूँजी निवेश किया उनमें से अधिकांश कंपनियों ने अपने निवेश करने के अगले वर्षों में ही अपनी निवेश की हुई पूँजी के बराबर या उससे अधिक पूँजी कमा ली। बाकी अन्य कंपनियों ने अधिकतम 5 वर्षों में अपनी निवेश की हुई पूँजी को कमा लिया।

हर क्षेत्र में घुसी हैं बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ

आज देश का छोटा-बड़ा प्रत्येक क्षेत्र इन विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का गुलाम है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में आने वाली कोई भी चीज ऐसी नहीं है, जिसे ये कम्पनियाँ न बनाती हो। दैनिक उपयोग के सामानों का उत्पादन करके ये विदेशी कंपनियाँ घर-घर में घुसी हुई हैं। खेती के काम में आने वाले जहरीले कीटनाशकों, खादों अन्य उपकरणों का उत्पादन करके इन विदेशी कंपनियों ने हमारी आत्मनिर्भर खेती को अपना गुलाम बना लिया हैं। उद्योगो के क्षेत्र में रद्दी तकनीकी का इस्तेमाल करके वातावरण को विषैला कर दिया है। हवा, पानी और मिट्टी भी अब प्रदूषण से मुक्त नहीं हैं।

नीचे उन क्षेत्रों की सूची दी गयी है जिनमें घुसकर इन विदेशी कंपनियों में हमारी आर्थिक व्यवस्था को पंगु बना या हैं-

कुछ प्रमुख उत्पादन के क्षेत्र, जिनमें विदेशी कंपनियाँ घुसी हुई हैं।

1. दैनिक उपभोग की सामग्री के क्षेत्र में
2. दवा उद्योग के क्षेत्र में
3. खाद, कीटनाशक, दवायें व खेती उपकरणों के क्षेत्र में
4. मोटर-गाडियों के उपकरणों के उत्पादन के क्षेत्र में
5. भारी इंजीनियरिंग सामानों के उत्पादन के क्षेत्र में
6. इलेक्ट्रानिकी व इलेक्ट्रीकल सामानों के उत्पादन के क्षेत्र में
7. सैनिक रक्षा सामग्री के क्षेत्र में
8. सैनिक रक्षा सामग्री के क्षेत्र में
9. फूड़ प्रोसेसिंग व प्लांटेशन(चाय,कॉफी,डिब्बाबंद खाद्य पदार्थ,चॉकलेट)
10. वैज्ञानिक रक्षा अनुसंधान में
11. सीमेंट उद्योग में
12. तेल शोधन व उत्पादन के क्षेत्र में
13. धातुओं के खनन तथा निष्कर्षण क्षेत्र में
14. जूट उद्योग में
15. सिले हुए (रेडीमेड) कपड़ों के उत्पादन क्षेत्र में
16. जूते व अन्य खेल सामानों के उत्पादन क्षेत्र में
17. रबर इन्डस्ट्रीज के क्षेत्र में
18. बच्चों के खिलौने व अन्य प्लास्टिक सामानों के उत्पादन में

विदेशी पूँजी का धोखा

बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ जब भी दुनिया के किसी देश में व्यापार करने के लिए जाती हैं तो वे उस देश के लिए भारी सिर दर्द बन जाती हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के किसी भी देश में काम करने से ऐसा नहीं है कि मात्र आर्थिक दुष्प्रभाव ही पड़ते हों अपितु उस देश में इन कंपनियों के व्यापक और गहरे प्रभाव नजर आते हैं। क्योंकि इन कंपनियों का चरित्र ही ऐसा है कि ये देश की नीतियाँ बदलवाने के लिए सीधे राजनैतिक हस्तक्षेप करती हैं। सामाजिक जीवन भी इन कंपनियों के प्रभाव से अछूता नहीं रहता हैं।

जब ये कंपनियाँ काम करने के लिए अन्य देशों में जाती हैं तो उनके पीछे कुछ मिथ्या धारणायें काम करती हैं जैसे ये अपने साथ पूँजी लायेगी, आधुनिक तकनीक देगी, लोगों के रोजगार के अवसर मुहैया करायेगी, देश का निर्यात बढ़ायेगी, देश के भुगतान संतुलन की स्थिति को चुस्त-दुरुस्त रखेगी, देश की आर्थिक संसाधनों में और अधिक वृद्धि करेगी आदि-आदि। लेकिन असलियत ठीक इन सभी दावों से उल्टी होती हैं।

विदेशी कंपनियों के पक्ष में सबसे बड़ी दलील दी जाती है कि भारत जैसे गरीब और पिछड़े देश में पूँजी की बड़ी कमी होती हैं और पूँजी के अभाव में विकास नहीं हो सकता। इसलिए विदेशों से पूँजी आमन्त्रित करके इस कमी को पूरा किया जा सकता है और पिछड़ेपन के दुष्चक्र को तोड़ा जा सकता हैं।

लेकिन सच्चाई कुछ और ही है। ये विदेशी कंपनियाँ बाहर से बहुत कम पूँजी लाती हैं, अधिकांश पूँजी यहां के बैंकों से कर्ज लेकर, यहाँ की जनता से कर्ज लेकर और उनको शेयर बेचकर एकत्रित करती हैं। देश में जितनी भी विदेशी कंपनियाँ कार्य कर रही हैं, वे औसतन 5 प्रतिशत तक पूँजी ही बाहर से लाती हैं। बाकी 90 प्रतिशत से लेकर 95 प्रतिशत तक पूँजी ये भारतीय स्त्रोतों से ही एकत्रित करती हैं।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा पूँजी निवेश मात्र एक धोखा हैं। हिन्दुस्तान लीवर, कॉलगेट, सीबागाइगी जैसी सैकड़ों विदेशी कंपनियों ने मात्र कुछ लाख रूपये से भारत में व्यापार शुरू किया। लाभ कमा-कमा कर बोनस शेयर के रूप में इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अपनी शेयर पूँजी करोड़ो रूपये में कर ली। अब ये कंपनियाँ रॉयल्टी, शुद्ध लाभ और टेक्नीकल फीस के रूप में अरबों रूपये भारत से बाहर ले जा रही हैं। इस बात की गंभीरता का अहसास इसी से हो जाता हैं कि 1967-77 में जहाँ भारत में कार्यरत विदेशी कंपनियाँ 121.54 करोड़ रूपये देश से बाहर ले गयीं, वहीं 1986-87 में यह राशि बढ़कर 494.6 करोड़ रूपये हो गयी। पिछले 11 वर्षों में ये बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ वैधानिक रूप से 3244.15 करोड़ रूपये भारत से बाह ले जा चुकी हैं, जबकि अवैधानिक तरीके से ये कंपनियाँ इससे कई गुनी अधिक राशि देश से बाहर ले जा चुकी हैं। इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की भारत में शेयर पूँजी लगभग 675 करोड़ रूपये मात्र है। ये बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ देश के खून-पीसने की कमाई विदेशी मुद्रा का निर्यात अपने मूल देशों को

कर रही हैं। इन बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ ने पूँजी के नाम पर कैसा मकड़जाल इस देश पर फैलाया है, इसका अनुमान दो-तीन उदाहरणों से लगाया जा सकता हैं।

हिन्दुस्तान लीवर ने भारत में सन् 1933 में जब व्यापार शुरु किया तब इसकी मूल कंपनी यूनीलीवर ने मात्र 24 लाख रूपये लगाये। 1933 में प्रारम्भ हुई इस कंपनी ने ऐसा जाल बिछाया कि 1990 में इसकी मूल कंपनी यूनीलीवर की शेयर पूँजी 47.59 करोड़ रूपये हो गयी। इसमें से 44.51 करोड़ रूपये की शेयर पूँजी बोनस के रूप में जुड़ी। 1975 से 1990 तक के बीच हिन्दुस्तान लीवर ने 80.18 करोड़ रूपये लाभांश के रूप में भारत से बाहर भेज दिये। यह रकम रायल्टी और तकनीकी शुल्क के अतिरिक्त हैं।

इसी तरह कॉलगेट-पामोलिव कंपनी ने सन् 1937 में मात्र 1.5 लाख रूपये से अपना कारोबार शुरु किया। 1989 के आते-आते अमरीकी कंपनी कॉलगेट-पामोलिव की शेयर पूँजी बढ़कर 12.57 करोड़ रूपये हो गयी। इसमें 12.56 करोड़ रूपये की पूँजी बोनस शेयर के रूप में जुड़ी। कॉलगेट-पामोलिव कंपनी 1977 से 1989 के बीच में 18.42 करोड़ रूपये लाभांश के रूप में भारत से अमरीका ले गयी।

सामान्यतः बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ जितनी पूँजी लेकर आती हैं, उससे कई गुना अधिक पूँजी तो वे एक ही वर्ष में देश के बाहर भेज देती हैं। उदाहरण – गुडईयर कंपनी ने भारत में 1 करोड़ रूपये पूँजी का निवेश किया। लेकिन 1989 में गुडईयर ने 7.33 करोड़ रूपया भारत से बाहर मुनाफे के रूप में भेज दिया।

वर्ष	विदेशी पूँजी निवेश	भारत से बाहर गया धन
1981	108 करोड़ रूपये	114 करोड़ रूपये
1982	628 करोड़ रूपये	641 करोड़ रूपये
1983	618 करोड़ रूपये	590 करोड़ रूपये
1984	1130 करोड़ रूपये	1169 करोड़ रूपये
1985	1260 करोड़ रूपये	1181 करोड़ रूपये
1986	1066 करोड़ रूपये	1265 करोड़ रूपये
1987	1077 करोड़ रूपये	1193 करोड़ रूपये
1991 से 1995	25,479 करोड़ रूपये	34,240 करोड़ रूपये

स्त्रोत - रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया रिपोर्ट

उच्च विदेशी तकनीक का झूठ

विदेशी उच्च तकनीक को लाने के नाम पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों को व्यापार की खुली छूट दी जाती हैं। भारत में आने वाली सभी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने विदेशी उच्च तकनीक देने के समझौते पर हस्ताक्षर कर रखे हैं। लेकिन वास्तव में अधिकांश बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ ऐसे क्षेत्रों में व्यापार

कर रही हैं, जहाँ विदेशी तकनीक की कोई जरूरत नही हैं। 80 के दशक में सरकार की ओर से एक नीति बनायी गयी थी। इस नीति के अनुसार 850 ऐसी वस्तुएं हैं, जिसके उत्पादन को लघु उद्योगों के लिए सुरक्षित रखा गया हैं। लेकिन जितनी भी विशालकाय बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हैं, वे सभी इन्हीं उत्पादों के व्यापार में लगी हुई हैं। लघु उद्योगों के लिये आरक्षित उत्पादों के क्षेत्र में घुसपैठ से बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा उच्च विदेशी तकनीक लाने की बात एकदम झूठ साबित होती है।

माल देशी, मुहर विदेशी

कई बार ऐसा भी होता है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ न तो पूँजी लाती है और न ही कोई उच्च तकनीक। होता यह है कि ये बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ कुछ भारतीय कंपनियों के साथ 'फ्रेंचाइज एग्रीमेंट' करती हैं या 'सब कान्ट्रेक्टिंग एग्रीमेंट' करती हैं। इसके तहत उत्पादन का काम तो वह भारतीय कंपनी करती है लेकिन उत्पादित माल पर नाम बहुराष्ट्रीय कंपनी का ही होता है। अर्थात् बाजार में बिकने वाले माल की उत्पादक कोई स्वदेशी कंपनी है लेकिन माल विदेशी कंपनी के नाम से बिकता है। पूँजी लगाये स्वदेशी कंपनी, तकनीक इस्तेमाल करे स्वदेशी कंपनी, उत्पादन कराये स्वदेशी कंपनी, लेकिन माल बिके विदेशी कंपनी के नाम पर। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का यह गोरखधंधा इस देश में खूब चल रहा हैं।

घटते रोजगार और बढ़ती बेरोजगारी

आँखे मूंदकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के माध्यम से, जब हम बनी-बनायी तकनीक का आयात करते हैं तो हम दरअसल दूसरे देशों के इंजीनियरों, तकनीकी विशेषज्ञों को काम मुहैया कराते हैं। अर्थात् अपने देश से विकसित देशों को रोजगार का निर्यात करते हैं। इस तकनीकी आयात की प्रक्रिया में भारतीय इंजीनियरों व तकनीकी विशेषज्ञों को जो अतिरिक्त कार्य दिया जा सकता था और अधिक रोजगार के अवसर पैदा किये जा सकते थे, वे एकदम समाप्त हो जाते हैं। इससे हमारे देश के इंजीनियर व तकनीकी विशेषज्ञ बेकार रहते हैं, वही दूसरी ओर किसी विकसित औद्योगिक, देश को जहाँ की कंपनी होती हैं, अतिरिक्त रोजगार के अवसर पैदा हो जाते हैं। इसके अलावा जब बनी बनायी तकनीक आयात होता हैं तो भारतीय इंजीनियरों का कार्य सिर्फ तंत्र को चालू रखन का होता है। सर्वविदित है कि कारखानों के रख-रखाव के लिए किसी बड़ी प्रतिभा की जरूरत नहीं होती है। जबकि तकनीकी विशेषज्ञता का योगदान नयी विधियाँ विकसित करने में और विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान द्वारा विकास करने में होता है। इस प्रकार जो इंजीनियर या तकनीकी विशेषज्ञ देश में काम में लगे हुए हैं, उनकी प्रतिभा का भी सही उपयोग नहीं हो पाता हैं।

'सेंटर फॉर प्लानिंग रिसर्च एण्ड एक्शन' (नयी दिल्ली) के अध्ययन के मुताबिक प्रतिभा पलायन के कारण भारत को अब तक 247 अरब रूपये का नुकसान हो चुका है और अगर यह नही रूका तो शताब्दी के अंत तक 5 लाख से ज्यादा कुशल और प्रशिक्षित भारतीय विदेशों में काम कर रहे होंगे।

फिलहाल 4 लाख 10 हजार भारतीय विदेशों में काम कर रहे हैं। अध्ययन के अनुसार भारतीय इंजीनियर विदेशी में 32%, डॉक्टर 28% और वैज्ञानिक 5% हैं।

जब एक डॉक्टर भारत को छोड़कर अमेरिका जाता है तो देश को 35 करोड़ रूपये का नुकसान होता है लेकिन वह अमरीका में 60 करोड़ यानि 20 गुना धन कमा कर उस देश की समृद्धि में भागीदार होता है। जबकि दूसरी ओर भारत एक विकासशील देश है जहाँ डॉक्टरों का अभाव हैं, जहाँ शहर में 5 हजार लोगों पर एक डॉक्टर है तथा गाँव में 45 हजार लोगों पर एक डॉक्टर हैं।

भारत से निकलने वाली प्रतिभाओं की एक बड़ी संख्या अमेरिका चली जाती हैं। 1957 से 1965 तक अमेरिका में भारतीय वैज्ञानिकों, डॉक्टरों तथा इंजीनियरों की संख्या सिर्फ 1000 थीं वही 1966 से 1968 तक वह संख्या 4000 हो गयी। 1977 तक भारत में 16,849 वैज्ञानिक, इंजीनियर,डॉक्टर अमेरिका चले गये।

उदार आर्थिक नीतियों के चलते देश में विदेशी अनुबंधो की बाढ़ आ गयी है। जुलाई 1995 तक देश में 20,000 से अधिक विदेशी अनुबंध चल रहे हैं। जिनके चलते गैर जरूरी क्षेत्रों में आर्थिक विकास ज्यादा हुआ हैं। पिछले 5 वर्षों में संगठित क्षेत्रों में सबसे अधिक विकास हुआ है जबकि इस क्षेत्र में रोजगार अवसरों की वृद्धि दर मात्र 1.5 प्रतिशत रही है। यानि संगठित क्षेत्र में पूँजी निवेश सबसे अधिक हुआ है लेकिन रोजगार के अवसर उस तुलना में पैदा नही हुए।

दूसरी ओर देश का लघु उद्योग का क्षेत्र है जिसमें सबसे कम पूँजी का निवेश किया जाता है। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि देश के जितने भी रोजगार है उनमें से 80 प्रतिशत इन अंसगठित लघु उद्योगो में है। लघु उद्योगों में 1986-87 में रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की संख्या 10.1 करोड़ थी जो वर्ष 1987-88 में बढ़कर 10.7 करोड़ तक पहुँच गयी भारत में 1988 के अंत तक लघु उद्योगों की कुल संख्या 14.6 लाख थी। इसमें से 3 लाख लघु इकाईयाँ इन विशालकाय कंपनियों के बाजार में एकाधिकार के चलते बीमार हो गयी हैं और बंद होने के कगार पर हैं।

चूँकि इन विदेशी कंपनियों ने लघु उद्योग में बनने वाले हर सामान को बनाने के क्षेत्र में घुसपैठ कर रखी हैं, अतः लगभग 10 लाख 30 हजार अन्य छोटी इकाईयाँ इनके सामने प्रतिस्पर्धा में धीरे-धीरे चल रही हैं। हर वर्ष देश में बीमार इकाईयों की संख्या बढ़ती चली जा रही है जिससे लाखों लोग बेरोजगार होते जा रहे हैं। सरकारी आँकड़ों के अनुसार देश में प्रतिवर्ष 1 करोड़ 84 लाख नये बेरोजगार लोग पैदा हो जाते हैं। इनमें से अधिकांश छोटी इकाईयों के बंद हो जाने की वजह से बेरोजगार हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त इन विदेशी कंपनियों ने विकास के नाम पर सैकड़ों वर्षों से चल रहे हमारे देशी कारोबार, हुनर और हस्त शिल्प को रौंदा हैं, जिसमें लगे करोड़ों लोगों की रोजी-रोटी छिन गयी हैं। आधुनिकीकरण की सबसे ज्यादा मार पड़ी हैं कारीगरों, दस्तकारों व कुटीर उद्योगों पर। जूता उद्योग का आधुनिकीकरण होगा तो कौन मारा जायेगा? मोची। कपड़ा उद्यग का मशीनीकरण होगा तो कौन बर्बाद होगा? बुनकर। वस्त्र उद्योग का रेडीमेडकरण होगा तो कौन नष्ट होगा? दर्जी। मिठाई

बनाने के क्षेत्र में जब विदेशी कंपनियाँ घुसेंगी तो कौन हैरान होगा? हलवाई। कुल्हड़ की जगह विदेशी कंपनियाँ प्लास्टिक के गिलास बनाने लगेगी तो कुम्हार किस काम का रह जायेगा? फलों का रस डिब्बा बंद करके बेचने के लिए विदेशी कंपनियाँ आयेगी तो कौन समाप्त होगा? फलों का रस बेचने वाले लोग। पानी बेचने के लिए भी विदेशी कंपनियाँ आयेगी तो आगे कहा नहीं जा सकता, हम लोग स्वयं सोच लें।

गुलाम होती खेती

आजकल देश में एक नारा बहुत जोर शोर से इन कंपनियों द्वारा दिया जा रहा हैं कि 'खेती को उद्योग बनाओं'। यानि अब खेत को कारखाना बनाने की साजिश देश में चल रही हैं। अब ये कम्पनियाँ खेती के बल पर और अधिक मालामाल होने के सपने देख रही हैं। हमें याद होना चाहिए कि आज से लगभग 60 वर्ष पहले इन्ही कंपनियों द्वारा देश में 'हरित क्रान्ति' का नारा दिया गया था। खेती की उन्नति और विकास के नाम पर चले इस नारे ने भारत की पांरपरिक कृषि व्यवस्था और उसके साथ जुड़ी हुई, समाज व्यवस्था को चौपट करके रख दिया। उसी तरह अब खेती की उन्नति के नाम पर खेती को उद्योग का दर्जा देने की बात भारत के सामान्य और बहुसंख्यक किसानों के लिए देश की बची कूची कृषि व्यवस्था के लिए घातक सिद्ध होगी।

छह दशक पहले जिस हरित क्रान्ति के नारे के साथ कृषि प्रधान राज्यों ने रसायन और नाइट्रोजन युक्त सस्ता यूरिया खेतों में डालना शुरू किया तब उन्हें बिल्कुल भी अंदाजा नहीं रहा होगा कि उनके खेत सिर्फ फसल नहीं बल्कि गंभीर बीमारी और मौत भी बांटेंगे। बीमार होने वालों में दिल्ली, हरियाणा, पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश का नाम शीर्ष पर हैं। इन राज्यों ने खेतों में अंधाधुंध नाइट्रोजन युक्त यूरिया का इस्तेमाल किया हैं। इंडियन नाइट्रोजन ग्रुप के शोध में यह दावा किया गया हैं कि भारत में नाइट्रोजन प्रदूषण का मुख्य स्त्रोत कृषि है। वहीं, चावल और गेहूँ की फसलें प्रदूषण का जरिया बन रही हैं। पहली बार नाइट्रोजन के प्रयोग और प्रभाव पर इंडियन नाइट्रोजन ग्रुप ने दस वर्ष का गहन शोध किया है। 120 क्षेत्रों के वैज्ञानिकों ने नाइट्रोजन के विभिन्न स्त्रोतों का पता लगाया हैं। चिंता की बात है कि भारत दुनिया में तीसरे स्थान पर कृषि में सर्वाधिक यूरिया का इस्तेमाल करने वाला देश हैं। 1960-61 में जहाँ 10 फीसदी नाइट्रोजन उर्वरकों का इस्तेमाल किया जाता था। जो कि 2015-2016 में बढ़कर 82 फीसदी रिकार्ड किया गया हैं।

एक साल में इतना बिका यूरिया सीएसई के मुताबिक, वर्ष 2015 से 2016 के बीच यूरिया की बिक्री पंजाब में जहां 30,86046 टन और हरियाणा ने 21,12981 टन, दिल्ली में 10,792, उत्तर प्रदेश में 57.98991 टन हुई। इस नाइट्रोजन युक्त यूरिया का महज 30 फीसदी ही खेतों तक पहुँचा बाकी पर्यावरण में जहर बनकर घुल गया। यह बच्चों के लिए भी खतरनाक है। नाइट्रेट युक्त पानी यदि छह महीने तक बच्चा पीता है तो वह ब्लू बेबी सिंड्रोम का शिकार हो सकता है। खून संबंधी कई बीमारियां भी हो सकती हैं।

बढ़ रहे हैं आईवीएफ सेंटर कुदरती खेती की विधि और सीख देने वाले भगत पूर्ण सिंह फार्म के इंचार्ज राजवीर सिंह बताते हैं कि यूरिया और रसायन के इस्तेमाल से पैदा फसलों ने उपजाऊ जमीन को बर्बाद कर दिया हैं। फसलों में जिंक बिल्कुल भी नहीं हैं जिससे लोगों में प्रजनन

क्षमता कमजोर हुई हैं। पंजाब और हरियाणा में काफी आईवीएफ सेंटर खुल रहे हैं। डब्ल्यूएचओ की रिपोर्ट में भी इस बात की तस्दीक की गई है। इन फसलों के चलते हमारी मांसपेशियां पूरी तरह विकसित नहीं हो रही हैं। जिसका परिणाम जगह-जगह दिखाई देने वाले आईवीएफ सेंटर हैं।

हरियाणा के भूजल में दुगुना नाइट्रोजन आईएनजी और सेंटर फॉर साइंस एंड एनवॉयरमेंट के मुताबिक, मिट्टी में बहुत मात्रा में नाइट्रोजन घुलने से कार्बन तत्व काफी कम हो जाता हैं। उसमें मौजूद पोषण तत्वों का संतुलन बिगड़ जाता है। नाइट्रोजन प्रदूषण पानी को भी प्रभावित करता हैं। पंजाब, उत्तर प्रदेश और हरियाणा के भूमिगत जल में नाइट्रेट की मौजूदगी विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानकों से बहुत अधिक पाई गई है। हरियाणा में यह सर्वाधिक 99.5 एमजी प्रति लीटर हैं। जो विश्व स्वास्थ्य संगठन के सामान्य मानक 50 एमजी प्रति लीटर से करीब दोगुना हैं।

350 थैले यूरिया का इस्तेमाल 1978 में जहाँ एक एकड़ खेत में 7 से 8 थैले यूरिया के इस्तेमाल होते थे। वहीं अब 350 थैले का इस्तेमाल हो रहा हैं। बावजूद मनचाही फसल की पैदावार किसानों को नहीं मिल रही। हरित क्रांति का नारा जब आया उसी वक्त इसका विरोध हुआ था लेकिन देशभर के लिए अनाज पैदा करने वाला पंजाब प्रयोग की धरती बन कर रह गया। आज खेतों में रहने वाले किसानों में कैंसर, मोतियाबिंद और कई अन्य गंभीर बीमारियां पल रही हैं।

33 फीसदी ही खेत में पहुँचता है यूरिया आईएनजी के अध्यक्ष एन रघुराम बताते हैं कि बीते पांच दशकों में हर भारतीय किसान ने औसत 6 हजार किलों से अधिक यूरिया का इस्तेमाल किया हैं। सिर्फ 33 प्रतिशत उपभोग ही चावल और गेहूँ की फसलें करती हैं। शेष 67 फीसदी मिट्टी, पानी और पर्यावरण में पहुँचकर उसे तबाह कर रहा हैं।

कीटनाशकों का कहर

उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के रायपुरा-जंगला गांव में 15 अप्रैल 1990 की रात को एक समारोह में विषाक्त भोजन खाने से 200 से अधिक लोग मारे गये। इस दर्दनाक हादसे के कारणों का सही-सही पता चला, जब पूरी जांच की गयी, जांच के बाद पाया गया कि लोगों की मौच अत्यंत घातक कीटनाशक पैरथियान और ई.एन.पी के कारण हुई।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के जाल में फंसकर यह माना गया कि खेती की उपज बढ़ाने के लिए यदि ढेरों तरह के जहरीले कीटनाशी रसायनों का भरपूर इस्तेमाल जारी नहीं रहा तो कीटाणु सारी फसल को चट कर जायेंगे और सारी मानवता भुखमरी की चपेट में आ जायेगी। इन कंपनियों द्वारा प्रचारित विकास, किसी अन्य विकल्प को प्रकृति प्रेमियों व पर्यावरणवादियों का सुहाना सपना समझकर उसकी खिल्ली उडाता हैं। मिट्टी की हिफाजत का परम्परागत देशी तौर तरीका, खरपतवार, घरेलू व कृषि कूड़ा-कचरा और देशी गाय के मल-मूत्र से बनी खाद, परस्पर मदद पहुँचाने वाली फलसों का बारी-बारी से बोया जाना यानी फसल-चक्र, यह सब विदेशी कंपनियों, द्वारा विकसित तकनीक ने छीन लिया हैं। मिट्टी, हवा, पानी और फसल के बीच जो प्राणवान, समन्वित और निरापद नाता था, वह बेमानी हो गया हैं। उसका स्थान ले लिया बेकस मिट्टी और जहरीले रासायनिक द्रव्यों ने।

'हरित क्रान्ति' के बाद खेती रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों पर पूरी तरह निर्भ होकर रह गयी हैं। इसका नतीजा यह है कि जो अनाज जीवनदायी माना जाता है, वही उर्वरकों व कीटनाशकों के कारण गुणवत्ता में निम्न स्तर का होकर अस्वास्थ्यकर और जानलेवा तक होने लगा हैं। 'हरित क्रान्ति' के दौरान अनाज उत्पादन में चमत्कारिक वृद्धि असल में एक मिथक हैं, उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार सन् 1947 के बाद के पहले दशक में जहाँ अन्न उत्पादन में 3.5% प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हुई। वहीं अगले दशक में अर्थात् 60 के दशक में यह दर मात्र 2.25% प्रतिशत रही। यह दर दो दशकों तक जारी रही। एकमात्र गेहूँ ही ऐसा अनाज है जिसका उत्पादन 4.5% वार्षिक दर से बढ़कर 7.62% हो गयी लेकिन दूसरी ओर का सच यह है कि बाकी अन्य सभी अनाजों की वृद्धि दर लगातार घटती गयी। इन आँकड़ों से हरित क्रान्ति के भोजन पर पड़ने वाले प्रभाव स्पष्ट देखे जा सकते हैं। हरित क्रान्ति के दौरान गेहूँ का उत्पादन क्षेत्र बढ़ता गया और मोटे अनाजों, दालों, तिलहन आदि का उत्पादन क्षेत्र घटता गया। इस कारण भोजन में प्रोटीन की मात्रा घटती गयी। नये अनाजों का असर पशुओं को भी झेलना पड़ रहा हैं क्योंकि ज्यादा उपज देने वाली फसलों का भूसा पोषक तत्वों के मामले में कमजोर होता हैं।

आज अनाज, फल, सब्जियाँ, दलहन, तिलहन, दूध और मांस-मछली तक सभी में विषाक्त तत्वों की भरभार हैं जो एक धीमी मौत की ओर हमें धकेल रही हैं। इसके बावजूद रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का इस्तेमाल न केवल जारी है बल्कि तेजी से बढ़ भी रहा हैं। आँकड़ो पर नजर डालें तो विशेषज्ञों का कहना है कि सन् 1960 से 1980 के दौरान भारत में कीटनाशकों की खपत में 20 गुना इजाफा हुआ हैं। इस दौरान कीटनाशकों के उत्पादन में 14% की बढोत्तरी हुई है और इनका आयात भी इस बीच 7 गुना बढ़ा।

संस्कृति पर हमला

क्या करूँ? "इनकी साँस में बदबू हैं" कहकर एक नयी नवेली पत्नी उदास हो जाती है। फिर उसकी एक सहेली उसे डॉक्टर के पास ले जाती हैं। डॉक्टर सलाह देतै है कि "यदि साँस की बदबू से छूटकारा पाना है तो 'कॉलगेट का सुरक्षा चक्र' अपनाइये।

इसी तरह से 'क्लोज अप फार क्लोजेज अस'। अर्थात् क्लोज-अप के इस्तेमाल से ही पति-पत्नी नजदीक आ सकते हैं सवाल उठता है कि 'क्या पति-पत्नि का रिश्ता एक 10 रूपल्ली वाली कोलगेट या क्लोज अप के पेस्ट की ट्यूब पर टिका हुआ हैं?' इसी तरह बालों को काला बनाने तथा गिरने से बचाने के लिए कई तरह के हेयर ड्राई, तेल तथा दवाओं के विज्ञापन आते हैं। जबकि सच यह है कि अभी तक बालों को गिरने या सफेद होने से रोकने का कोई उपचार नहीं निकला हैं। लेकिन हर रोज ऐसे विज्ञापन टी.वी पर आते रहते हैं जो लोगों के मन में सिवाय भ्रम के और कुछ नहीं पैदा करते। यही बात दंत मंजन पर भी लागू होती हैं। अभी तक दुनिया में ऐसा कोई भी मंजन नहीं है जो दातों की बीमारियों को दूर कर सके या फिर दांतों को रोग लगने से बचाए। फिर भी टी.वी पर या पत्रिकाओं में जिस तरह के चमकते हुए दांतों को दिखाया जाता हैं, वह किसी खास कंपनी के मंजन के चमत्कार के रूप में होती है। एक के बाद एक सभी दांतों के खराब हो जाने पर भी लोग उपचार की दृष्टि से मंजनों की निरर्थकता को देख नहीं पाते।

किसी विशेष कंपनी की साड़ी में सजी हुई सुन्दर औरत, सूट में सजा हुआ सुन्दर नौजवान, कोका या पेप्सी की बोतल लिए समुद्र तट के रमणीक माहौल में खड़े सुन्दर स्त्री-पुरूष, विशेष कंपनी के स्वीमिंग सूट में समुद्र तट पर क्रीड़ा करती हुई बालायें – ये सब चटकीले-भड़कीले

विज्ञापन ऐसा मानसिक माहौल तैयार करते है कि लोग विज्ञापन मॉडलों की सुंदरता का अर्थ खास कंपनी के परिधानों और सजावट में निहित होने लगता हैं। जबकि सुंदरता किसी व्यक्ति के स्वास्थ्य और स्वभाव से आती हैं।

इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के विज्ञापनों ने एक खास किस्म की 'स्टेटस प्राब्लम' को जन्म दिया हैं। अब रोटी, कपड़ा और मकान वाली विचारधारा तो समाप्त हो चुकी हैं। उसकी जगह ले ली हैं नये-नये चिप्स, कुकीज, रैंगलर जींस, वॉल पेपर, आधुनिक टाइल्स आदि ने। भले श्रीमती जी दिन भर पड़ी सोती रहें, पर वैक्यूम क्लीनर न होने की वजह से उन्हें वक्त ही नहीं मिलता खाना बनाने का। या फूट प्रोसेसर जब नहीं होगा तो खाना बनाने में देर तो लगेगी ही, इसमें उनकी क्या गलती है। इन सबका परिणाम होता है अतार्किक एवं अनावश्यक व्यय, जो कि धीरे-धीरे आपको तार्किक एवं आवश्यक लगने लगता हैं। 'स्टेटस सिंबल' पहले से ऊँचा होना रहता है लेकिन वेतन उस अनुपात में बढ़ता नहीं, नतीजा होता हैं व्यक्ति के भ्रष्ट्राचारी बनने की कहानी शुरू होती है यानि विज्ञापनों काभारी रहता हैं। इस तरह एक ईमानदार व्यक्ति के भ्रष्ट्राचारी बनने की कहानी शुरू होती है यानि विज्ञापनों का रिश्ता भ्रष्टाचार से भी हैं।

विज्ञापनों में कभी भी वस्तु को गुणवत्ता के आधार पर बेचने की कोशिश नहीं की जाती हैं। ये विज्ञापन तो माध्यम वर्ग के ग्लैमर को भुनाने की कोशिश करते हैं। ये विज्ञापन व्यक्ति में एक हीन भावना पैदा करते हैं। अधिकाशतः होता यह है कि विज्ञापित वस्तु होती मध्यमवर्ग के इस्तेमाल की है पर विज्ञापन में दिखाया जाता हैं, विशुद्ध रईसाना पांच सितारों वाली जीवन शैली। मध्यम वर्ग की एक कमजोरी होती है कि उसमें उच्च वर्गीय जीवन के प्रति एक विशेष किस्म की जिज्ञासा तथा वैसा जीवन जीने की दमित इच्छा होती है। विज्ञापन भंयकर सिद्ध होते हैं। एक आम आदमी चाहे जितनी भी विलासिता की वस्तुएं एकत्रित कर ले पर वह कभी भी उस किस्म की जीवन शैली को वहन नहीं कर सकता जैसी कि उसे विज्ञापन में दिखायी जाती हैं। इसका परिणाम होता है एक भीषण हीन भावना का जन्म, जो बढ़ती जाती है तथा एक सीमा के आगे जाने पर वैयक्तिक विघटन का कारण बन जाती हैं।

अब तो बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने मनोरंजन परोसने के नाम पर अपने टेलीविजन नेटर्वक को शुरु कर दिया हैं। सी. एन.एन., स्टार, ए.टी.एन, एम.टी.वी., एल.टी.वी, यू.टी.वी आदि अनेकों बहुराष्ट्रीय टेलीविजन कंपनियों का जाल पूरे देश में फैल गया है। मनोरंजन के नाम पर बीसियों चैनल देश में चल रहे हैं। इन चैनलों पर दिखाये जाने वाले सीरियल, फिल्में तथा अन्य कार्यक्रम हमारे समाज को सांस्कृतिक रूप से खोखला बना रहे हैं। दो दर्जन से अधिक बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने इन विदेशी टी.वी चैनलों के प्रमुख समय को खरीद लिया है। सीरियल तथा कार्यक्रमों में क्या संस्कृति दिखायी जायेगी, इसका फैसला बहुराष्ट्रीय कंपनियों का पैसा तय करता है। यह इस देश में पहली बार हो रहा है जब सीरियल तथा अन्य कार्यक्रम कलाकर्मियों और रचनाकारों की कल्पना या भावना से नहीं बन रहे हैं बल्कि दुनिया के सबसे बड़े लुटेरों के निर्देशों पर बन रहे हैं। इस नये सांस्कृतिक उद्योग का सय यही हैं। आज हमारी संस्कृति एक झटके में ही बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों में चली गयी है। विदेशी चैनलों के कार्यक्रमों में एक समूची नई किस्म की उत्तेजक और भौंडी जीवन शैली दिखायी जा रही हैं। इसे देखकर दीनहीन, थके-हारे और निन्यावे बार असफल रहने वाले लोगों के मन में भी कमावासना जागृत हो जाती हैं। इन चैनलों पर दिखाये जा रहे कार्यक्रमों या फिल्मों द्वारा एक घोषित सैक्स और हिंसा का युद्ध चलाया जाता रहा हैं। इसका उद्देश्य व्यभिचार, यौनिक लिप्सा और हिंसा को बढ़ावा देना है।

स्वदेशी शिक्षा

अपनी विलक्षण शिक्षापद्धति के बलबूते पर ही भारत ने हजारों वर्षो तक वि[illegible] सांस्कृतिक नेतृत्व किया हैं। तदुपरांत उद्योग-व्यवसाय, कला-कौशल्य और ज्ञान-विज्ञान के [illegible] भी वह अग्रगण्य रहा है।

भारतीय ऋषियों ने पदार्थो की रचना का विश्लेषण किया [illegible] आत्मतत्व का भी साक्षात्कार किया। उन्होंने तर्क, व्याकरण, खगोलशास्त्र, दर्शनशास्त्र, तत्वज्ञान, औषधिविज्ञान, शरीर-रचना- विज्ञान और गणित जैसे गहन विषयों की रचना की। भारतीय शिक्षा का वटवृक्ष उन्होंने धर्म, नीति और ज्ञान के खाद और जल से सींचा था। इसलिए ही तत्कालीन समाज धार्मिक, नीतिमान् और बुद्धिमान् बन सका था। भारतीय समाज के नैतिक गुणों के विषय में ई.स. पूर्व 300 में ग्रीक राजदूत मेंगस्थनीज ने लिखा है, 'कोई भी भारतीय असत्य बोलने का अपराधी नहीं है। सत्यवादिता और सदाचार उनकी दृष्टि में अतीव मूल्यवान वस्तु है' इस प्रकार भारतीय शिक्षापद्धति द्वारा भारत ने केवल ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में ही नही, परंतु नीतिमत्ता, प्रामाणिकता और सदाचार की दृष्टि से भी नेत्रदीपक विकास किया था।

हमारी भारतीय आर्य पंरपरा में विद्या प्राप्ति की मुख्य व्यवस्थआ के रूप में गुरुकुलम् एवं पाठशालाएँ केन्द्र स्थान पर थे। सांदीपनि ऋषि के तपोवन में श्रीकृष्ण और सुदामा ने शिक्षा प्राप्त की थी। वशिष्ठ और विश्वामित्र ऋषि के विद्याश्रम भी प्रसिद्ध थे। तप-स्वाध्याय में निरत ऐसे ऋषि ही बच्चों को शिक्षा प्रदान करते थे। उन ऋषियों के संस्कारित जीवन की महक गुरुकुल के सभी विद्यार्थियों के जीवन को सुगंधित कर देती थी। ऐसी शिक्षा पद्धति के विकसित उदाहरण थे, विश्वप्रसिद्ध नालन्दा और तक्षशिला जैसे विश्व विद्यालय । इसके अलावा वल्लभी, विक्रमशिला, ओदन्तपुरी, मिथिला, काशी, कश्मीर और उज्जैन आदि विश्वविद्यालय भी विख्यात शिक्षा केन्द्र थे।

तत्कालीन राजा महाराजा – श्रेष्ठजनों ने अपनी विपुल सम्पत्ति का अनुदान दे कर भारत के ऐसे विराट सरस्वती मंदिरों की स्थापना करने में अपना सहयोग प्रदान किया था। ऐसे विश्वविद्यालयों में

हजारों की संख्या में विद्यार्थी विविध विषयों का अभ्यास करते थे और विश्वविद्यालय की कीर्तिपताका समूचे विश्व में लहराते थे। भारत के विश्वविद्यालयों में भारत के ही नहीं बल्कि तिब्बत, चीन, जापान, कोरिया, और श्रीलंका जैसे देशों के भी ज्ञान – इच्छुक विद्यार्थी अध्ययन हेतु आते थे।

हमारे प्राचीन भारत में शत-प्रतिशत साक्षरता थी। भारत के हर गाँव में एक पाठशाला थी, जहाँ पर सभी वर्ण के बालक एवं बालिकाएँ प्राथमिक अक्षरज्ञान और धर्मनीति की शिक्षा प्राप्त करते थे। पाठशाला चाहे वह गुजरात की हो या बंगाल की, कश्मीर की हो या तमिलनाडू की, सभी पाठशालाओं की शिक्षा का एकमेव विशिष्ट उद्देश्य था – 'मानव के व्यक्तित्व का उच्चतम विकास' । भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में भारतीय विद्यालयों ने ऐसे ज्ञान का अविष्कार किया की जिस के आगे समूचे विश्व के दार्शनिक और वैज्ञानिक भी नतमस्तक थे।

आज से 200 वर्ष पहले तक जिस प्रकार की उत्तम शिक्षा भारत में दी जाती थी, वैसी विश्व के किसी भी देश में नही दी जाती थी। अंग्रेजों के आगमन से पहले शिक्षा और विद्या प्रचार के क्षेत्र में भारत दुनिया के देशों में सबसे अग्रणी माना जाता था।

लेकिन मनुष्य के आंतरिक गुणों के उजागर कर के उस के दोषों का निर्मूलन करने वाली महान भारतीय शिक्षा प्रणाली को विदेशी आक्रमणों का कुठाराघात सहना पड़ा। मुसलमानों के शासनकाल के दौरान भारत के शिक्षाकेन्द्र, गृहशाला, पाठशाला, विद्यालय इत्यादि नष्ट-भ्रष्ट कर दिए गए। फिर भी मुस्लिम शासक – बाबर से लेकर औरंगजेब तक भारतीय शिक्षण व्यवस्था को इतना नुकसान नहीं पहुँचा सके, जितना अंग्रेजों ने पहुँचाया। अंग्रेजों ने मुसलमान शासकों की तरह न तो पाठशाला जलाई, न विद्यालय गिरा कर ध्वस्त किये, परंतु जैसे कोई गुप्तचर गुप्त वेष में शत्रु राज्य में जासूसी करने के लिए प्रवेश करता है, वैसे ही भारत की शिक्षाप्रणाली में प्रविष्ट हुए।

अंग्रेजों की इस कुटिलनीति का प्रधान चालबाज खिलाड़ी था मैकाले। उस की अनर्थकारी आधुनिकता शिक्षाप्रणाली की सफलता के परिणाम दिखाते हुए उसने कहा था कि, 'अंग्रेजी शिक्षापद्धति द्वारा भारतीय केवल नाम का ही भारतीय रहेगा, शरीर से ही भारतवासी होगा, किन्तु मन से, विचार से, वचन और आचरण से वह पूरा अंग्रेज ही बन जायेगा। 'इस विचार को, पद्धति को, क्रियान्वित करने के लिए प्राचीन पाठशाला (गुरुकुलम्) पद्धति का विनाश करना अनिवार्य था। इसलिए शकुनी नीति से गाँव-गाँव में चल रहे विद्यालय बंद करवा दिए। प्राचीन शिक्षा का सामाजिक एवं राजकीय मूल्य ही नष्ट कर दिए। इस प्रकार गुरुकुल शिक्षा पद्धति नष्टप्रायः हो गई। फलतः भारत में उत्तम मनुष्य, राष्ट्रभक्त, नीतिमान्, प्रामाणिक व्यक्ति दुर्लभ हो गये और अंग्रेजी शिक्षापद्धति के ढाँचे में ढले हुए निकृष्ट, व्यसनी, व्यभिचारी, आलसी, रोगी और अप्रामाणिक व्यक्ति, जो परोक्ष रुप से अंग्रेजीयत के समर्थक थे, ऐसे लोग देश का, समाज का नेतृत्व करने लगे तो रही –सही प्राचीन शिक्षाप्रणाली भी नेस्तनाबूत हो गई।

ध्वस्त हुई प्राचीन शिक्षा प्रणाली को पुनर्जीवित किए बिना भारतीय प्रजा एवं संस्कृति का समुद्धार असम्भव हैं।

अतः इस परम्परा को पुनः प्रस्थापित करनी ही चाहिए। तभी, मैकाले-शिक्षा के दुष्प्रभाव से हमारे देश में आज जो दुर्दशा हुई है, उस से हम भारत को बचा पाएंगे।

वर्तमान की सभी समस्याओं का मूल आधुनिक शिक्षा-प्रणाली ही है। इस शिक्षा को लेने वाले जैसे-जैसे बढ़ते गए... वैसे-वैसे गरीबी, बेरोजगारी, बीमारी, महंगाई, अनीति, अपराध, आत्महत्याएं, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, अनाचार और बलात्कारों की संख्या बढ़ती गई। वायु, जल, जमीन, जंगल और जानवर सभी आज दूषित हैं। ऐसी भयावह दुर्दशा के सूत्रधार प्रायः मैकाले-शिक्षण प्राप्त शिक्षित ही होते हैं।

आज से दो सौ साल पूर्व तक जो देश विश्व में शिक्षित माने जाने वाले देशों में अग्रसर था, जो विश्व का अग्रगण्य कृषिप्रधान और प्रथम स्तर का उद्योगप्रधान देश था, वही अंग्रेजों के 150 साल के शासन के बाद शिक्षा की दृष्टि से सबसे पिछड़ गया। औद्योगिक रूप से वह टूट गया, बेकारों और बीमारों से भरा देश बन गया। हम अपनी मातृभाषा में शिक्षा देने के बजाय अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा दिलाने में गौरव महसूस करते हैं। अपने प्रदेश की भाषाओं की लड़ाई में एक दूसरे का गला घोंटने या भारत संघ में से अलग हो जाने के लिए उतारू हो गए हैं। विदेशियों से प्राप्त कर्ज आदि को विदेशियों की सहानुभूति, सद्भावना और सहायता के रूप में स्वीकृत करते हैं। विदेशियों की सहायता बिना कुछ भी कर पाने में असमर्थ प्रमाणित हुए हैं।

भारतीय शिक्षा पद्धति सर्वोत्तम और मोक्षदायिनी थी। उसका प्रसार प्रत्येक घर में था। हमारी शिक्षा के विषय में पूरी जानकारी इकट्टा करने के बाद, उसे खत्म कर, उन्होंने हिंसक, जुगुप्साप्रेरक, शोषक और विकासलक्षी शिक्षारूपी शस्त्र का हम पर एक प्रयोग किया है जिसे 'मोहास्त्र' कह सकते हैं। हम उससे d मोहित होकर उसके चक्कर में फँस गए हैं फिर भी उसमें गौरव मानते हैं।

हमारा देश आजाद हुआ, तब देश में 40 लाख लोग बेकार थे। उसके बाद लोगों को रोजगार देने के नाम पर 14,916 करोड़ रूपयों की लागत से कारखाने बनाए गए। बेकारों की संख्या 40 लाख से बढ़कर 4 करोड़ तक पहुँच गई। इन फैक्ट्ररियों में मानव संसाधन पूरा करने के लिए समग्र प्रजा पर शिक्षा का राक्षसी और निर्थक बोझ डाला गया। देश के लाखों आशावान् युवकों को आज भी हताश बनाकर बेकारी, बीमारी, अपराध और मंहगाई से पीड़ित समाज में धकेल दिया जाता हैं।

बढ़ती हुई बेकारी के इस प्रवाह का कारण जनसंख्या वृद्धि बताकर आत्म-प्रवंचना करना सरकार का पुराना शगल है। क्योंकि आबादी में बढ़ावा 50 प्रतिशत है जबकि पब्लिक सैक्टर के ही औद्योगिक कारखानों में पूंजी लगाने का वृद्धि प्रमाण 358 प्रतिशत और बेकारी की वृद्धि 900 प्रतिशत है।

ग्रामीण बच्चों का अधिकांश वर्ग किसानों, पशुपालकों और ग्रामीण कारीगरों द्वारा बना हुआ है। उन्हें अपने पैतृक धंधे करने होते हैं। इन धंधो को छोड़कर व उन उपाधियों के पीछे दौड़ेगें तो बेकारी का बोलबाला हो जाएगा और कृषि, पशुपालन और ग्रामीण उद्योग नष्ट हो जाएँगे, जो अंधेरगर्दी में परिणत हो सकता है और राष्ट्र की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है। राष्ट्र को पालने, पोषने और प्रजा की जीवन-जरूरतें पूरी करने का कर्तव्य इन बच्चों को ही निभाना होगा। इस कार्य में उन्हें कॉलेज की उपाधियाँ किसी काम में की नहीं आती। उन्हें कृषि और पशुपालन सीखना हो तो B.Ag.या Veterinary Surgeon की उपाधि लेने की कोई आवश्यकता नहीं हैं।

- ❖ दुनिया में सबसे ज्यादा बेरहम और अमानवीय माँ-बाप आपको कहाँ मिलेंगे? जाहिर है, ऐसे माँ-बाप आपको हिन्दुस्तान में मिलेंगे और सरप्लस में मिलेंगे।
- ❖ इन माँ-बापों के पास ढेर सारा पैसा है और ढेर सारी मूर्खताएँ हैं। ये माँ-बाप अगर दुनिया में किसी चीज के बारे में सबसे कम जानते हैं, तो अपने बच्चों के बारे में।

❖ जैसे, माँ-बाप नहीं जानते कि उनके बच्चों के लिए धूप में रहना बहुत जरूरी है। विटामिन, टॉनिक या सिरप से नहीं, कुदरत से मिलता है और मुफ्त मिलता है।

❖ बच्चा मिट्टी में नही खेलेगा , तो बड़ा कैसे होगा? स्वस्थ कैसे रहेगा? बच्चे के शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता का निर्माण मिट्टी से होता है। बच्चों को मिट्टी से दूर रखना, बच्चों के साथ दुश्मनी निभाना है।

❖ मौजूदा लाइफ स्टाइल का मंत्र है – बच्चे को धूप से दूर रखिए, हवा से दूर रखिए, मिट्टी से दूर रखिए। जी हाँ, अब तो दो साल के बच्चों के लिए जिम खुल गए हैं।

❖ बच्चे को किस उम्र में स्कूल भेजना चाहिए? अपने बचपन के सबसे बेहतरीन चार-पाँच साल, बच्चों के खेलने, मस्ती करने और खाने-पीने के होते हैं। बच्चों का सबसे अनमोल समय उनके माँ-बाप उनसे छीन लेते हैं। प्ले ग्रुप, नर्सरी, जूनियर केजी, सीनियर केजी, स्कैटिंग, डान्स क्लास, चित्रकारी यानी लिस्ट बहुत लम्बी है। तीन साल के बच्चे को गर्मागर्म खाने के बदले टिफिन का खाना?

❖ प्ले ग्रुप से फर्स्ट स्टैंडर्ड तक की पाँच साल की यह कवायद बच्चे को कहाँ ले जाती है? बच्चे गिनती या पहाड़े नहीं सीख पाते, लेकिन टीवी पर आने वाला हर विज्ञापन उन्हें याद रहता है। उन्हें पता चल जाता है कि रोटी-सब्जी नहीं, पिज्जा-बर्गर उनका भोजन है।

❖ लड़कियाँ 'प्रियंका चोपड़ा' बनना चाहती है और लड़के ऋतिक रोशन। चार साल का बच्चा मेक्डोनल्ड़ में जाने के लिए घर सर पर उठा लेता है। पाँच साल की स्वीट बच्ची अभी से फेयर और लवली की डिमांड करती है।

❖ किताबों का बोझ, ट्यूशन, बर्थ-डे पर हर रोज मिलने वाली चॉकलेट, कभी मदर्स डे, तो कभी फादर्स डे, वन डे पिकनिक, चक्करदार फैशन प्रतियोगिताएँ और ऐसी ही ढेर सारी चीजों का अंबार लगा है बच्चों की दुनिया में। सिर्फ एक चीज गायब है – 'बचपन'।

- ❖ कागज की कश्ती नदी में बहाने नहीं ले जाता कोई। छत पर चाँद दिखाने नहीं ले जाता कोई। लोरी गाकर नहीं सुलाता कोई। गुड़ का गर्म शीरा नहीं खिलाता कोई। न नानी की कहानियाए

याद रहीं और दादाजी के भूने हुए चने खाने की आदत छूट गई। बच्चे समय की रफ्तार से तेज भाग रहें है। बहुत तेज, अपने माँ-बाप की पकड़ से दूर।।

बच्चों की शिक्षा कैसी हो?

बच्चों का दखिला ऐसे स्कूल में न करायें जिसमें होमवर्क बच्चों को ज्यादा मिलता हैं। बच्चे स्कूल के होमवर्क, ट्यूशन के होमवर्क, घर के होमवर्क के आगे कुछ सोच नहीं पाते हैं,

जिससे उनका मानसिक विकास रूक जाता हैं। बच्चों को जो होमवर्क में मिलता हैं जीवन में वह कभी काम नहीं आता हैं। ऐसे स्कूल में दाखिले से अच्छा नगर परिषद, जिला परिषद के स्कूलों में पढ़ाये। हमारे देश के भूतपूर्व राष्ट्रपति ऐ.पी.जे. अब्दुल कलाम जिला परिषद के स्कूल में पढ़े थे। जब गाँव में थे तो ग्राम पंचायत के स्कूल में पढ़े, नगर परिषद के स्कूल में पढ़े। अब्दुल कलाम कभी कॉन्वेट स्कूल में नहीं पढ़े और भारत के सबसे बड़े वैज्ञानिकों में उनका नाम हैं। पढ़ाई से वैज्ञानिक होने का कोई संबंध नहीं हैं। वैज्ञानिक होने का संबंध दिमाग से हैं। आप का दिमाग कितना फ्री है कि चिन्तन कर सकता हैं, उसी से वह वैज्ञानिक बनता हैं। ज्यादा पढ़ाई करके, बहुत होमवर्क करके दुनिया में कोई भी वैज्ञानिक नहीं हुआ। आइन्स्टाइन, न्यूटन, एडिसन का नाम सुना है आपने, ये सब स्कूल से भागे हुए थे या स्कूल से निकाल दिये गये थे। आइन्सटाइन ने कक्षा 9 में स्कूल छोड़ दिया, न्यूटन ने कक्षा 8 में स्कूल छोड़ दिया, एडिसन को स्कूल से कक्षा 3 में निकाल दिया था। मैक्सवेल बहुत बड़ा वैज्ञानिक था कक्षा 7 से ही स्कूल छोड़कर भाग गया था। जबच्चों का स्वतंत्र चिन्तन होता हैं वही वैज्ञानिक बन सकते हैं। स्कूल की पढ़ाई का बच्चों को जीवन में कोई लाभ नहीं मिलता हैं फिर भी सबकुछ चल रहा हैं। बच्चों से किसी को कोई मतलब नहीं हैं, न तो स्कूल को, न स्कूल के टीचर को और न ही बच्चों के गार्जियन को। सब अपनी ड्यूटी पूरी कर रहे हैं। इसलिए आप अपने बच्चों को ऐसी शाला में भर्ती करवाइये जहां बच्चा स्वतंत्र चिन्त कर सके, ज्यादा खेले-कूदे, जहाँ बच्चे के ऊपर होमवर्क का भार नहीं हो या कम हो। क्षेत्रीय भाषा या हिन्दी माध्यम के स्कूल में भर्ती करवाइये। अंग्रेजी माध्यम में कभी भर्ती मत करवाइये। बच्चों के ऊपर अंग्रेजी माध्यम की इतनी तकलीफ होती है कि बच्चों का सबसे ज्यादा समय ट्रांसलेशन में बीत जाता है। घर की अपनी भाषा हैं और स्कूल की अंग्रेजी भाषा हैं तो हर बार बच्चा अपनी भाषा से अंग्रेजी भाषा में ट्रांसलेशन ही करता रह जायेगा। इसी में बच्चे के जीवन का महत्वपूर्ण समय निकल जाता हैं। पांचवी कक्षा तक अपनी क्षेत्रीय भाषा ही सिखाइये। जब बच्चे की उम्र 10 से 12 वर्ष की हो जाये तब अंग्रेजी सिखाइये, लेकिन माध्यम के रूप में नही भाषा के रूप में। अंग्रेजी माध्यम कभी अच्छा नहीं हैं।

बच्चों मे नंबर लाने के लिए कभी भी दूसरे बच्चे से तुलना मत कीजिए कि किसी बच्वें का 90 प्रतिशत नंबर आता हैं और तुम्हारा 70 प्रतिशत नंबर आता हैं। बच्चों की तुलना इसलिए नही करनी चाहिए कि हर बच्चा अपने आप में यूनिक होता हैं, विशेष होता हैं। 90 प्रतिशत नंबर पाने वाले बच्चे

को बहुत सी ऐसी बातें हैं जिसकी जानकारी नहीं हो सकती हैं लेकिन 70 प्रतिशत नंबर पाने वाले को ऐसी बातों की जानकारी हो सकती हैं। स्पर्धा में जरूर भाग लेने दीजिए लेकिन ट्रॉफी पाने के दबाव में नही, स्वतंत्र रूप से। यह कोई जरूरी नहीं है कि माता-पिता बच्चों के भविष्य के बारे में सभी निर्णय ले सकते हैं। ऐसा इसलिए जरूरी नहीं है कि माता-पिता के ऊपर ऐसे निर्णयों में समाज का दबाव होता है और आज-कल के समाज में लोगों को अपने बच्चे को डॉक्टर, इन्जीनियर, कंपनी का मैनेजर बनाने की होड़ लगी हैं। और सामाजिक दबाव में कोई जरूरी नहीं है कि माता-पिता बच्चें के भविष्य के लिए सही निर्णय ले पायें। समाज में इसके अतिरिक्त भी बहुत सारे क्षेत्र हैं जिधर बच्चा अपने स्वभाव से जा सकता हैं। किसान क्यों नहीं होना चाहिए? समाज के दबाव में यदि आप बच्चे पर कोई निर्णय थोपेंगे तो बच्चा खुद जो बनना चाहता है वह नहीं बन पायेगा। भविष्य सभी का ईश्वर ने तय किया हैं। मेरी माँ ने मुझे इंजीनियरिंग की बहुत बड़ी पढ़ाई करवाई। अभी मैं वो सब छोड़कर इस काम में लग गया हूँ, तो मेरी माँ कहती हैं- तेरे नसीब में यही सब था। तो मैने उसको बोला – मुझे फालतू में इंजीनियरिंग क्यों करवाया, जिसमें 15-16 लाख रूपये खर्च भी हो गये और मेरा 15 साल बर्बाद हो गए। मान लो मैं वो 15 -16 साल अपना बर्बाद नहीं करता और उसकी जगह भजन-कीर्तन करता। मान लो में किसी सच्चे सन्त के पास आकर कुछ सीख लेता तो 15 साल में 15 हजार सभायें होतीं और 1 लाख कार्यकर्ता होते। तो सबका नसीब, सबका भविष्य भगवान का तय किया हुआ हैं और उसके आगे किसी की भी नहीं चल सकती हैं। बच्चे को क्या करना है बच्चे से पूछकर उसमें सहयोग कीजिए। माता-पिता होते हुए अपने बच्चे को जो सुविधा देने में सक्षम हों वो सुविधा अपने बच्चे को दें।

स्वध्याय के लिए उसे, समाज कैसे चलता हैं, उसका ज्ञान दें। जैसे अपने बच्चे को एक दिन पोस्ट ऑफिस लेकर जाइये और पोस्ट ऑफिस में A to Z सभी तरह के कार्यों का अध्ययन करवाइये। ऐसे एक दिन उसे रेलवे स्टेशन लेकर जायें और रेलवे स्टेशन में होने वाले सभी तरह के कार्यों का ज्ञान दीजिए। इसी तरह उसे एक बार महानगर पालिका लेकर जाइये, फिर किसी दिन उसे गौ-शाला में लेकर जाइये, ऐसे ही एक दिन उसे मन्दबुद्धि बच्चों के स्कूल या विकलांग बच्चों के स्कूल पर ले जाइये। ऐसी जगहों पर ले जाकर उसे व्यवहारिक ज्ञान दीजिए। इसमें से जो वो सीखेगा उसी में से उसके रास्ते खुलेंगे।

ये जो क्लास की स्टड़ी है ये दुनिया की सबसे खराब स्टड़ी हैं। जो हम पढ़ते हैं, वह दुनिया का कोई बच्चा नहीं पढ़ता हैं, ना फ्रान्स में, ना जापान में, ना जर्मनी में, न स्वीडन में, न स्विटरलैण्ड में, न डेनमार्क में, न अमेरिका में। हमको जो पढ़ाया जाता हैं वह दुनिया में कोई नहीं पढ़ता हैं।

सर्टीफिकेट की दृष्टि से बच्चे को उतना ही पढ़ाइये जितना सर्टिफिकेट पाने के लिए आवश्यक हो। इससे ज्यादा पढ़ाने की आवश्यकता नहीं हैं। ज्यादा ज्ञान अपने बच्चे को समा का दीजिए, परिवार का दीजिए, दुनिया का दीजिए। ये सब ज्ञान उसके जीवन में जरूर काम आयेगा और उसमें से उसके रास्ते भी निकल आयेंगे। सर्टिफिकेट के लिए एज्युकेशन बिल्कुल बेकार की हैं, उसमें ज्ञान कुछ भी नही जो जीवन में काम आये। सर्टिफिकेट की मान्यता तब तक हैं जब तक आपके बच्चे के पास ज्ञान नहीं हैं।

हिन्दुस्तान में जिन लोगो को ज्ञान हो जाता हैं उनकी डिग्री कोई नही पूछता हैं। जैसे- सन्त ज्ञानेश्वर की डिग्री किसी ने नहीं पूछी, समर्थ गुरू रामदास की डिग्री कभी देखी आपने, छत्रपति शिवाजी महाराज की डिग्री पूछी आप ने, शम्भा जी महाराज की डिग्री पूछी आपने, तुकड़ो जी महाराज की डिग्री कभी पूछी आपने। इसलिए जब व्यक्ति को ज्ञान हो जाता हैं तो हम उसके ज्ञान को पूजते हैं उसकी डिग्री कभी नहीं पूछते हैं। डिग्री तभी तक पूछी जाती है जब तक उसके ज्ञान का आपको पता नहीं हैं।

दुनिया में किसी की भी पूजा हुई हैं, समाज ने किसी को भी महान बनाया है तो बिना डिग्री के हुई हैं। इन्दिरा गाँधी 8 वी कक्षा में फेल थी। इन्दिरा गाँधी रवीन्द्र नाथ टैगोर के गुरुकुल में पढ़ती थी और 8वीं में दो बार फेल हुई और वह भारत की 17 वर्ष तक प्रधानमंत्री रहीं। इन्दिरा गाँधी की डिग्री को कोई नहीं पूछता हैं। उसने जो किया है उसको पूछते हैं। ज्ञान हमेशा डिग्री से बड़ा होता हैं। ऐसा पूरी दुनिया में होता हैं।

धीरू भाई अम्बानी की डिग्री, 9वीं फेल थे, उनके पिता ने स्कूल से निकाल दिया और उससे पूछा तू क्या करेगा तो धीरू भाई ने कहा मैं पैसा कमाऊंगा तो धीरू भाई के पिता जी ने अपने दोस्त के पैट्रोल पम्प पर उनको नौकरी पर रखवा दिया, गुजरात में जूनागढ़ नाम के शहर में। वही धीरू भाई अम्बानी पैट्रोल भरा करते थे और धीरू भाई का आज लाखों करोड़ रूपये का एम्पायर हैं। धीरू भाई नौवीं फेल थे लेकिन उनके नीचे काम करने वाले लोग बड़े-बड़े इंजीनियर, पी.एच.डी., एम.डी., जैसी बडी-बड़ी डिग्रियों वाले लोग हैं, नौकर की तरह। ऐसे ही घनश्याम दास बिड़ला चौथी फेल थे और उसके बाद स्कूल छोड़कर व्यवसाय में लग गये और वो भी लाखों करोड़ के एम्पायर के मालिक हैं। ऐसे ही जमशेद जी टाटा एक भी क्लास पढ़ने नही गया। कभी स्कूल नहीं गये। उनको घर पर एक टीचर पढ़ाता था। आज उनका एम्पायर लाखों करोड़ो का हैं।

दुनिया में डिग्री लेकर कोई महान हुआ हैं ऐसे दो-चार ही मिलेंगे। बिना डिग्री के बहुत ऊंचाई पर गये ऐसे सैकड़ों लोग हैं। पुणे में किर्लोस्कर कंपनी हैं, इसका मूल संस्थापक 5वीं पास हैं। डिग्री का महत्व है नौकरी पाने के लिए, सिपाही होने के लिए, क्लर्क होने के लिए, नौकर बनने के लिए। अपने बच्चे को यदि नौकर बनाना है तो डिग्री पर ध्यान दीजिए और यदि समाज में कोई ऐसा स्थान दिलाना हैं जिसकी सब इज्जत करें तो ज्ञान को महत्व दीजिए। इसलिए 10-15 साल महत्वपूर्ण समय हैं जो स्कूलों में एवं उनके होमवर्क में व्यर्थ चला ता हैं। इसमें अपने बच्चों को वेद पढ़ाइयें, उपनिषद पढ़ाइये, गीता पढ़ाइये, भारत के और दूसरे शास्त्रों को पढ़ाइयें। उसके साथ में 10वीं-12वीं की परीक्षा दिलवाइये, नंबर के लिए नहीं बल्कि डिग्री के लिए। इसके बाद उनको ज्ञान सिखाने की कोशिश करें। सर्टिफिकेट ज्यादातर 10वीं और 12वीं का ही लगता हैं। उसके पहले का कोई नहीं पूछता हैं तो 5वीं, 6वीं, 7वीं, 8वी की डिग्री के पीछे पड कर टाइम क्यों खराब करना।

अभी मैं जो काम कर रहा हूँ वह डिग्री वालों ने नही सिखाया हैं। मैने स्वध्याय से सीखा हैं। जो मैने स्वध्याय से सीखा हैं वही मुझे काम आ रहा हैं। डिग्री वाला तो कभी काम नहीं आ रहा हैं।

बच्चों को भारतीय संगीत का अभ्यास कराना चाहिए। चाहें तो भारतीय गायन, भारतीय वादन या भारतीय नृत्य तीनों में से कोई एक जरूर सिखाना चाहिए। पेन्टिंग/चित्रकला का अभ्यास करवाना चाहिए, मूर्तिकला का अभ्यास करवाना चाहिए।

भारतवर्ष में गुरुकुल कैसे खत्म हो गए?

1858 में Indian Education Act बनाया गया। इसकी ड्राफ्टिंग लोर्ड मैकाले ने की थी। लेकिन उसके पहले उसने वहाँ (भारत) के शिक्षा व्यवस्था का सर्वेक्षण कराया था, उसके पहले भी कई अंग्रेजों ने भारत की शिक्षा व्यवस्था के बारे में अपनी रिपोर्ट दी थी। अंग्रेजों का एक अधिकारी था G.W. Litnar और दूसरा अधिकारी था Thomas Munro दोनों ने अलग-अलग इलाकों का अलग-अलग समय सर्वे किया था। 1823 के आस-पास की बात है। Litnar जिसने उत्तर भारत का सर्वे किया था, उसने लिखा था कि यहाँ 97% साक्षरता है और Munro, जिसने दक्षिण भारत का सर्वे किया था उसने लिखा कि यहाँ तो 100% साक्षरता है, और उस समय जब भारत में इतनी साक्षरता थी और मैकॉले का स्पष्ट कहना था कि भारत को हमेशा-हमेशा के लिए अगर गुलाम बनाना है तो इसकी 'देशी और सांस्कृतिक शिक्षा व्यवस्था' को पूरी तरह से ध्वस्त करना होगा और उसकी जगह 'अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था' लानी होगी और तभी इस देश में शरीर से हिन्दुस्तानी लेकिन दिमाग से अंग्रेज पैदा होंगे और जब इस देश की यूनिवर्सिटी से निकलेंगे तो हमारे हित में काम करेंगे और मैकॉले एक मुहावरा इस्तेमाल कर रहा हैं – 'जैसे किसी खेत में कोई फसल लगाने के पहले पूरी तरह जोत दिया जाता है वैसे ही इसे जोतना होगा और अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था लानी होगी।' इसलिए उसने सबसे पहले गुरुकुलों को गैरकानूनी घोषित किया, जब गुरुकुल गैरकानूनी हो गए तो उनको मिलने वाली सहायता, जो समाज की तरफ से होती थी, वो गैरकानूनी हो गयी, फिर संस्कृत को गैरकानूनी घोषित किया और इस देश के गुरुकुलों को घूम-घूम कर खत्म कर दिया, उनमें आग लगा दी, उसमें पढाने वाले गुरुओं को उसने मारा-पीटा, जेल में डाला।

1850 तक इस देश में 7 लाख 32 हजार गुरुकुल हुआ करते थे और उस समय इस देश में गाँव थे '7 लाख 50 हजार, मतलब हर गाँव में औसतन एक गुरुकुल और ये जो गुरुकुल होते थे वो सब के सब आज की भाषा में 'Higher Learning Institute' हुआ करते थे, और ये गुरुकुल समाज के लोग मिलकर चलाते थे, न कि राजा, महाराजा।

इन गुरुकुलों में शिक्षा निःशुल्क दी जाती थी। किन्तु सारे गुरुकुलों को खत्म किया गया और फिर अंग्रेजी शिक्षा को कानूनी घोषित किया गया और कलकत्ता में पहला कॉन्वेन्ट स्कूल खोला गया, उस समय इसे 'फ्री स्कूल' कहा जाता था। इसी कानून के तहत भारत में कलकत्ता यूनिवर्सिटी, बम्बई यूनिवर्सिटी, मद्रास यूनिवर्सिटि बनाई गयी और ये तीनों गुलामी के जमाने के यूनिवर्सिटी आज भी इस देश में है।